आख़िरी चट्टान तक

मोहन राकेश

प्रगति प्रकाशन
दिल्ली

मूल्य तीन रुपये
जुलाई १९५१

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्ज़, ७।२३, दरयागंज द्वारा प्रकाशित
तथा
हिन्दी मन्दिर प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

रास्ते के दोस्तों को

यात्रा के लिए निकलने पर जीवन के विभिन्न चित्र जिस क्रम से मेरे सामने आते रहे हैं, उन्हें उस क्रम से मैंने इस पुस्तक में प्रस्तुत कर दिया है। हां, उनका सम्पादन मैंने किया है। यह स्वाभाविक है कि पुस्तक में आये हुए कुछ चरित्र पढ़ने वाले को अधूरे लगें। मैंने उन चरित्रों को लेकर कहानियाँ नहीं बुनीं। अधूरे और परस्पर असम्बद्ध होते हुए भी वे अब एक कैन्वस पर एक साथ है—हालाँकि वह कैन्वस भी जीवन के विशाल कैन्वस का छोटा-सा टुकड़ा ही है।

मलयालम भाषी प्रदेश में—विशेष रूप से वहां की छोटी बस्तियों में—मुझे बहुत कम लोग हिन्दी बोलने या समझने वाले मिले। वहां अधिकांश व्यक्तियों के साथ मेरा बातचीत का माध्यम अंग्रेजी ही रहा। मैंने हर जगह इस बात का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी। जहां इस विषय में सन्देह पैदा हो, वहां अंग्रेजी ही माध्यम समझ लिया जाना चाहिए।

विशेष कारणों से कुछ जगह मुझे व्यक्तियों के नाम बदल देने पड़े हैं। जहां संभव था, वहां मैंने नाम नहीं बदले। भास्कर कुरुप उस व्यक्ति का वास्तविक नाम है, परन्तु श्री धरन् एक बदला हुआ नाम है।

आगरा
बैशाख, २०१०

मोहन राकेश

वांडर लस्ट

जब कभी मैं यात्रा करने के विषय में सोचता हूँ तो ऐसे-ऐसे चित्र सामने आते हैं:—

दूर दूर तक फैला हुआ एक खुला समुद्रतट है, जहाँ रेत में जगह जगह पत्थर और बड़ी बड़ी चट्टानें हैं। फूटी सराय है। सराय में रात को मटियाली सी रोशनी होती है, और उस रोशनी में बैठ कर कुछ जुआरी जुआ खेलते हैं। एक व्यक्ति जिसकी दाढ़ी डेढ़ दो महीने की उग रही है और जो आयु में पचपन वर्ष से ऊपर लगता है, चिरमिराली हुई खाने की मेज़ पर कुहनियाँ टिकाये, एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठा कोई पुराना अखबार पढ़ता है। मैं सामने बैठकर पानी पीता हुआ उसके अर्द्ध श्वेत बालों को ध्यान से देखता हूँ। ठण्डी हवा के एक दो झोंके आते हैं मेरे शरीर में थोड़ी कँपकँपी आती है और मैं पानी का गिलास होठों के पास रोककर मुस्कराता हूँ, कि यह सब वैसे ही घटित हो रहा है, जैसे मैं उस की कल्पना किया करता था ···

एक खुले मैदान में, खेतों से कुछ हटकर बाँसों की एक झोंपड़ी है। उस में एक चटाई है, एक चारपाई है, एक मेज़ है और दो तीन बेंत की कुर्सियाँ हैं। मेज़ पर कुछ पन्ने बिखरे हुए हैं, कुछ पन्ने फ़र्श

पर भी हैं। मैं वहां बैठ कर लिखता हूँ। छत के किसी सूराख़ में से एक सांप नीचे को लटक आता है। तभी दरवाज़े के पास मेरा एक मित्र दिखाई देता है, जो कई सौ मील से वहां मेरे पास ठहरने के लिए आया है। मैं पास जाकर उसका कंबल पकड़ता हूँ और हम एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराते हैं। सहसा मेज पर पड़े हुए सारे पन्ने ज़मीन पर बिखर जाते हैं ···

एक अंधेरा, गुफा जैसा घर है, जिस के एक कोने में आग जल रही है। आग की रोशनी में चार छः व्यक्ति एक घिसी पुरानी ताश खेलते हैं। वे जोर जोर से चिल्लाते और, कसमें खाते हैं। उन के मैले कपड़ों और शरीरों से विशेष तरह की गन्ध आती है। मैं घुटनों पर कुहनियाँ और हथेलियों में चेहरा टिकाये, उनका खेल तथा उनकी गतिविधि देखता हूँ। उनमें से जिस किसी की आँख मुझ से मिल जाती है, उसके चेहरे पर अनायास हल्की सी मुस्कराहट आ जाती है, पर दूसरे ही क्षण वह पुनः अपने खेल में व्यस्त हो जाता है, और उसी तरह चिल्लाने और क़समें खाने लगता है···

रास्ते का एक टूटा फूटा घर है या कच्ची ईंटों का बना एक टूटा फूटा कमरा-सा है, जिसमें एक बूढ़ा और एक बुढ़िया रहते हैं। मैं उस के पास एक रात के लिए ठहरता हूँ। वे दोनों मिल कर एक दूसरे को काटते हुए मुझे अपने जीवन की कोई घटना सुनाते हैं। फिर हम सब दाल के साथ रोटी खाते हैं और खा कर ज़मीन पर ही लेट जाते हैं। कुछ देर बाद वे दोनों तो सो जाते हैं, पर मुझे नींद नहीं आती। मेरा मन होता है कि मैं कई दिन तक उन दोनों के पास रहूँ। मैं लेटा हुआ छत की ओर देखता रहता हूँ। ऊपर से थोड़ी-थोड़ी देर बाद एकाध तिनका मेरे ऊपर आ गिरता है···

पहाड़ की एक खुली घाटी है; जिसके उस ओर कोई गाँव है। घाटी में से होकर गाँव तक कोई पगडण्डी नहीं जाती। मैं अपने

लिए रास्ता बनाता हुआ, घाटी में से होकर गाँव की ओर चल देता हूँ। रात को मैं उस गाँव में पहुँचता हूँ, परन्तु वहाँ ठहरने का कोई ठिकाना नहीं मिलता। लोग सो रहे होते हैं, कुत्ते भौंक रहे होते हैं और मैं सोचता हूँ कि अब क्या किया जाय? रात एक तख़्ते पर सो कर काट देता हूँ। सवेरे कई लोग अपने आप परिचित बन जाते हैं, और फिर गाँव के जीवन का नृत्यगीतमय रूप देखने को मिलता है, जो सभ्य समाज के आयोजनों से सर्वथा भिन्न अछूता और सुन्दर है ......

मुझे लगता है कि ये चित्र बहुत पहले पढ़ी हुई यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों के किन्हीं अंशों की छाप हैं, जिन्हें मैं वैसे भूल चुका हूँ। ऐसे चित्रों का बार बार सामने आना मेरे एक मित्र के कथनानुसार वांडर लस्ट का द्योतक है, जो कुछ अस्थिर स्वभाव के मनुष्यों में पाई जाती है।

अब्दुल जब्बार

बहुत दिनों से मेरा मन समुद्र तट के साथ-साथ एक लम्बी यात्रा करने का था, परन्तु यात्रा के लिए समय और साधन दोनों मेरे पास साथ-साथ कभी नहीं रहते थे। इस वर्ष किसी तरह खींचतान करके जब समय और साधन एक साथ मिल गये तो मैंने तुरन्त चल देने का निश्चय कर लिया। सोचा कन्याकुमारी चला जाऊँगा और वहाँ रेल, मोटर या नाव, जहाँ जो मिले उसी में बम्बई तक की यात्रा करूँगा। साथ ही यह भी विचार बना कि हो सका तो कहीं रहकर थोड़ा-सा लिखने का भी काम कर लूंगा। शिमले में मेरे कई परिचित

दक्षिण-भारत के थे। उनमें से एक ने कहा था कि रहने के लिए कनानोर बड़ी अच्छी जगह है। एक और का कहना था कि मैं क्वाइलोन जाऊं तो वहाँ कुछ दिन अवश्य रहूँ। दिल्ली में एक मित्र ने ज़ोर देकर कहा कि रहने के लिए पंजिम गोआ से अच्छी दूसरी जगह नहीं है। वहाँ समुद्र-तट भी है, प्राकृतिक सौंदर्य भी है और सबसे बड़ी बात यह है कि जीवन बहुत सस्ता है। परन्तु मैं पहले से कहीं रहने का निश्चय करने के पक्ष में नहीं था। मेरा विचार था कि यह चीज़ रास्ते पर ही छोड़ देनी चाहिए। हाँ, जाने से पहले यह निश्चय हो गया कि पहले कन्याकुमारी न जाकर बम्बई होता हुआ गोआ चला जाऊं और वहाँ से समुद्र तट के साथ-साथ कन्याकुमारी की ओर जाऊँ।

पच्चीस दिसम्बर को मैं आगरा से पंजाब मेल में बैठ गया। थर्ड क्लास में ऊपर की सीट बिस्तर बिछाने को मिल जाय, यह बड़ी बात होती है। मुझे एक सीट मिल गई और मैंने सोचा कि बम्बई तक कि यात्रा में अब कोई असुविधा नहीं होगी—रात को ठीक से सो सकूंगा। परन्तु जब रात आई तो मैं वहां सोने की बजाय भोपाल ताल में एक नाव में लेटा हुआ बूढ़े मल्लाह अब्दुल जब्बार से उर्दू की ग़ज़लें सुन रहा था।

हुआ यूं कि भोपाल स्टेशन पर मेरा मित्र, अविनाश, जो वहाँ से निकलने वाले एक हिन्दी दैनिक का सम्पादन करता है, मुझसे मिलने के लिए आया। उसने बात करने की बजाय मेरा बिस्तर लपेट कर खिड़की के रास्ते बाहर फेंक दिया और मेरा सूटकेस लेकर आप नीचे उतर गया। मित्रता जब इस तरह आदेश देती है, तो उसे टालना सम्भव नहीं होता। मैं एक रात के लिए भोपाल रह गया।

रात के ग्यारह बजे हम लोग घूमने के लिए निकले। घूमते हुए भोपाल ताल के पास पहुँचे तो मन हो आया कि नाव लेकर थोड़ा समय झील के वक्ष पर बिताया जाय। नाव ठीक की गयी और उसमें

बैठकर हम झील के उस भाग में पहुंच गये, जहाँ से चारों ओर के किनारे दूर लगते थे। वहाँ पहुँचकर अविनाश के हृदय में भावुकता (जिसे कुछ लोग सस्ती भावुकता कहेंगे) जाग आयी। उसने एक नज़र पानी पर डाली, एक नज़र दूर के किनारों पर, और पूर्णता चाहने वाले कलाकार के ढंग से कहा कि कितना अच्छा होता यदि हम में से इस समय कोई कुछ गा सकता!

"गा तो मैं नहीं सकता" उसकी बात सुनकर बूढ़े मल्लाह ने कहा "अगर हुजूर चाहें तो चन्द ग़ज़लें तरन्नुम के साथ अर्ज़ कर सकता हूं, और माशाल्लाह चुस्त ग़ज़लें हैं।"

"जरूर!" हमने उत्साह के साथ उसके प्रस्ताव का स्वागत किया। उसने एक ग़ज़ल छेड़ दी। उसका गला बुरा नहीं था और सुनाने का लहजा शायरों वाला ही था। ग़ज़ल का विषय शृंगारिक था—उस सीमा तक कि यदि वह हिन्दी की कविता होती तो उसे अश्लील कहा जाता। यही उसका चुस्त तत्त्व था। जिन शायर साहब की वह ग़ज़ल थी उन्हें मैं विभाजन से पहले लाहौर में जानता था। उन दिनों वे वैसी ग़ज़लें लिखने के कारण तरक्क़ी पसन्द शायर कहे जाते थे।

अबुल जब्बार ने एक के बाद दूसरी ग़ज़ल सुनाई, फिर तीसरी। मैं लेटा हुआ उसे देख रहा था। वह उस सर्दी में भी केवल एक तहमद बांधे था। गले में एक बनियान तक नहीं थीं। उसकी दाढ़ी के ही नहीं छाती तक के बाल सफ़ेद हो चुके थे, परन्तु डांडें चलाते समय उसकी बांहों की मांस पेशियां उसकी फ़ौलादी शक्ति का परिचय देती थीं। वह विभोर होकर ग़ज़ल सुना रहा था अतः उसके चेहरे की भाव भंगिमा भी दर्शनीय थी। पंक्ति के अन्त तक पहुँचते-पहुंचते उसका सिर आप ही झूम जाता था। दाद तो उसे मिल ही रही थी। उसकी आयु साठ से कम नहीं थी, पर अब भी उसके रोम रोम में जीवन दिखता था।

तीसरी ग़ज़ल सुनाकर वह ख़ामोश हो गया। उसके ख़ामोश हो जाने से सारा वातावरण ही और हो गया। रात, सर्दी, नाव का हिलना और पतवारों का शब्द इन सब का अनुभव पहले नहीं हो रहा था, अब होने लगा। झील का विस्तार भी जैसे सिमट गया था, अब फिर से खुल गया।

"अब लौट चलूं हुजूर" कुछ रुक कर उसने कहा, "सर्दी बढ़ रही है, और मैं अपनी चद्दर साथ नहीं लाया।"

अविनाश ने झट से अपना कोट उतार कर उसकी ओर बढ़ा दिया और कहा, "लो, इसे पहन लो। अभी लौट कर नहीं चलेंगे। कुछ और चीजें सुनाओ।"

अबुल जब्बार ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की और अविनाश का कोट लेकर पहन लिया। फिर उसने दो ग़ज़लें और सुनाईं। हम उसे बड़े मियाँ करके सम्बोधित कर रहे थे। अब मैंने उससे उसका नाम पूछा।

"मेरा नाम है साहब, अब्दुल जब्बार पठान।" पठान शब्द का उच्चारण उसने विशेष गर्व के साथ किया।

"मियाँ अब्दुल जब्बार, तुम ग़ज़ल बहुत अच्छी पढ़ते हो" मैंने कहा, "बहुत रंगीन मिजाज आदमी हो।"

"मर्दज़ाद हूं हुजूर," वह बोला, "तबीयत की रंगीनी खुदा ने मर्दजाद को ही बख़्शी है। जिसे यह हासिल नहीं, वह समझ लीजिए मर्दज़ाद नहीं।"

हम लोग मुस्कराये। अविनाश बोला, "अपनी उम्र में तो काफ़ी गुलछर्रे उड़ाये होंगे तुमने!"

वह भी मुस्कराया। सफ़ेद मूंछों के नीचे उसके होंठों पर आई हुई मुस्कराहट में एक विशेष रसिकता का भाव झलक गया। वह बोला

"उम्र तो हुजूर बन्दे की अक़्ल के रोज़ तक रहती है। मगर हाँ जवानी की बहार जवानी के साथ थी। बहुत ऐश की, बहुत बेवकूफ़ियाँ भी कीं। मगर कोई अफ़सोस नहीं है। फिर वो दिन मिलें तो वही बेवकूफ़ियां नये सिरे से की जाएंगी।"

"और अब नहीं ?" अविनाश से पूछे बिना नहीं रहा गया।

"अब हुजूर ? हिम्मत में किसी मर्दज़ाद से कम अब भी नहीं हूँ। कहिए जिस ख़बीस का ख़ून कर दूँ। मगर जहां तक नफ्स का सवाल है, उसकी मैं तौबा करता हूँ। बताऊँ किस वजह से तौबा करता हूं ? ज़रा ख़ामोश रह कर सुनिये।"

मैंने समझा था कि वह कोई सूफ़ियाना चीज सुनाने जा रहा है। मगर वह एक भी शब्द कहे बिना चुपचाप नाव चलाता रहा। पूर्ण निःस्तब्धता थी। पतवारों के पानी में पड़ने के अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा था। मैंने उत्सुकता पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह फिर मुस्करा रहा था, मगर अब उस मुस्कराहट में रसिकता नहीं, संजीदगी थी।

"सुन रहे हैं ?" उसने पूछा।

"क्या ?"

"यह आवाज़। रात की इस ख़ामोशी में चप्पुओं के पानी में पड़ने की आवाज़। शायद आपके लिए इसमें कोई ख़ास मतलब नहीं है। पहले मुझे भी इसमें कुछ ख़ास नहीं लगता था। मगर तीन साल पहले एक रात मैं अकेला झील को पार कर रहा था। ऐसी ही रात थी। ऐसा ही ख़ामोश समां था। जब मैं झील के बीच में आ गया तो चप्पुओं की आवाज उस दिन मुझे कुछ औरसी लगने लगी। हर बार जब यह आवाज़ होती तो मेरे जिस्म में एक सनसनी सी दौड़ जाती।

जैसे यह आवाज़ मेरी रूह को थपथपा रही थी। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे चप्पुओं की आवाज़ लकड़ी के पानी में पड़ने की आवाज नहीं, एक हल्की हल्की खुदाई आहट है। मुझे उस वक़्त लगा कि मैं खुदा के बहुत नज़दीक हूँ। मैंने दिल ही दिल सज्दा किया और अपने सब गुनाहों की तौबा की। उस दिन के बाद से कभी कभी रात के वक्त यह आवाज़ मुझे फिर वैसी लगने लगती है मैं अपनी उस तौबा की याद करता हूं और अल्लाह का शुक्र करता हूं कि उसने मुझे इस तरह तौबा का मौक़ा दिया और फिर नये सिरे से तौबा करता हूं और अल्लाह का शुक्र करता हूं।"

वह ख़ामोश हो गया। हम भी ख़ामोश रहे। केवल पानी में चप्पुओं के पड़ने का शब्द सुनाई देता रहा।

सहसा मुझे उसकी खून करने की बात याद आ गई। एक तरफ़ तो वह अपने गुनाहों की तौबा का जिक्र कर रहा था और दूसरी ओर किसी भी इन्सान का खून कर देने के लिए तैयार था।

"तुम इन्सान के खून को गुनाह नहीं समझते" मैंने पूछा।

मेरा मतलब समझ कर उसने उत्तर दिया, "हुजूर मैं पठान हूं। मेरी निगाह में गुनाह का ताल्लुक इन्सान की रूह के साथ है, जान के साथ नहीं। मैं किसी की आबरू लेता हूँ, किसी को ज़लील करता हूँ, किसी को लूटता हूं तो उसकी रूह को सदमा पहुँचाता हूं। यह गुनाह है। अगर मैं किसी खबीस की जान लेता हूँ तो एक नापाक रूह को आज़ाद करता हूँ। यह गुनाह नहीं है।"

"तो अब तुम बिल्कुल पाक ज़िन्दगी बिता रहे हो?" मैंने मुस्कराते हुए बात को संजीदगी से निकालने के लिए कहा।

"बिल्कुल कसम खाकर तो नहीं कह सकता," अब्दुल जब्बार भी संजीदगी छोड़ कर फिर रसिकता से मुस्कराता हुआ बोला, "यार

लोगों की मजलिस में शरक़त की दावत हो तो इन्कार भी नहीं किया जाता। वैसे दमखम तो साहब आपकी दुआ से अब भी इतना है कि ...'' और उसने जिन मार्के के शब्दों में अपने पुरुषत्व की घोषणा की उन्हें मैं कभी नहीं भूलूँगा।

''तो अब किनारे की तरफ ले चलूं. देर हो रही है।'' उसने फिर कहा अब अविनाश ने उससे और कुछ सुनने का अनुरोध नहीं किया। नाव धीरे धीरे किनारे की ओर बढ़ने लगी।

किनारे पहुंच कर जब हम चलने लगे तो अब्दुल जब्बार ने कहा, ''ताज़ा मछलियां पकड़ी हैं, दो एक सौग़ात के तौर पर ले जाइए।''

परन्तु अविनाश होटल में खाना खाता था और मैं उसी का मेहमान था अतः इन मछलियों का हमारे लिए कोई उपयोग नहीं था। हमने उसका शुक्रिया अदा किया और चल पड़े।

• •

नया प्रारम्भ

•

मेरे साथ प्रायः ऐसा होता है, कम से कम मुझे यह लगता तो है ही—कि बस या ट्रेन में जिस खिड़की के पास बैठता हूँ, धूप उसी खिड़की में से होकर आती है। इस दिशा में पहले से सावधानी बरतने का भी कोई फल नहीं होता क्यों कि सड़क या पटरी का रुख़ कुछ इस तरह से बदल जाता है कि धूप जहाँ पहले होती है, वहाँ से हट कर मेरे ऊपर आने लगती है। फिर भी मुझ से यह नहीं होता कि खिड़की के पास न बैठा करूं। गति का अनुभव खिड़की के पास बैठकर ही होता है। बीच में बैठ कर तो

ऐसे महसूस होता है जैसे गतिहीन केवल हिचकोले खाये जा रहे हैं ......

भोपाल से मैं अमृतसर एक्सप्रेस में बैठ गया था। चेष्टा करके जगह भी बनाली थी। पर धूप मेरे चेहरे पर आकर पड़ रही थी। मैं धूप से आँखों को बचाने की चेष्टा कर रहा था। कभी सिर थोड़ा एक ओर को हटाता, और कभी हाथ की पुस्तक ऊँची उठा कर आँखों पर छाया करता। मैंने देखा कि मेरे सामने की सीट पर बैठा हुआ एक लड़का मेरी इस चेष्टा पर मुस्करा रहा है। उसे शायद यह मनोरंजक लग रहा था कि मैं हाथ की पुस्तक को पढ़ना भी चाहता हूँ। फिर उसने अपने स्थान से थोड़ा सरक कर वहाँ जगह करते हुए मुझसे कहा "जी इधर आ जाइए, इधर धूप नहीं है।"

मैं उठ कर उधर वाली सीट पर बैठ गया और पुस्तक खोलकर पढ़ने लगा। कुछ देर बाद एक हाथ अपने आगे फैला हुआ देख कर मैं ने आँखें उठाईं। टी० टी० आई० टिकट देखने के लिए खड़ा था। मैंने टिकट निकाल कर उसे दिखा दिया। टी० टी० आई० ने साथ बैठे हुए लड़के की ओर हाथ बढ़ाया। लड़के ने अपनी कमीज़ की जेब में से एक बड़ा सा रुमाल निकाला। उस में एक टिकट और कुछ आने पैसे थे। टी टी आई ने उसका टिकट लेकर ध्यान से देखा और पूछा, " कहाँ से बैठे हो ?"

" बीना से " लड़के ने कहा।

" तुम्हारा टिकट तो बीना से भोपाल तक का है।" और टी टी आई ने उसे बताया कि एक तो भोपाल पीछे रह गया है और दूसरे बीना से भोपाल तक भी उस गाड़ी से थर्ड क्लास का टिकट लेकर सफर नहीं किया जा सकता।

' तुम्हें पता नहीं था कि यह लम्बे सफर की गाड़ी है?" उसने पूछा।

"मैं भी जी, लम्बे सफर के लिए बैठा हूं" लड़के ने उत्तर दिया, "मैं बम्बई जा रहा हूं।'

लड़के की बात सुन कर आस पास के बैठे हुए सभी लोग मुस्करा दिये। टी.टी.आई भी मुस्करा दिया। बोला, "फिर टिकट बम्बई तक का क्यों नहीं लिया ?'

"मेरे पास जितने पैसे थे जी उतने पैसों से यह टिकट आता था," लड़के ने अपनी बड़ी बड़ी आँखों से टी टी आई के चेहरे को देखते हुए कहा। टी टी आई क्षणभर अनिश्चित सा उसकी ओर देखता रहा। फिर जैसे उसे भूलकर वह दूसरों के टिकट देखने लगा।

मैंने अब लड़के की ओर ध्यान से देखा। वह गोरे रंग का दुबला पतला लड़का था। त्वचा बहुत पतली थी, क्योंकि उस के चेहरे की हरी नाड़ियां त्वचाके पीछे से झलक रही थीं। उस की आयु ग्यारह बारह वर्ष से अधिक नहीं लगती थी, यद्यपि चुप रहने पर उस के चेहरे पर व्यस्क-सा गंभीरता का भाव आ रहा था। वह खद्दी के कपड़े की हरे रंगकी कमीज और उसी कपड़े का भूरे रंग का पाजामा पहने था, जो दोनों ही अब बद रंग हो रहे थे। चेहरे के दुबलेपन को देखते हुए उस की आंखें और कान बहुत बड़े लगते थे। आँखों के नीचे पड़े हुए गड्ढे उन आँखों को जो वैसे सुन्दर कही जाती, अब ऐसा रूप दिये हुए थे कि देख कर सिहरन हो आती थी।

"बम्बई में किस के पास जा रहे हो ?" मैं ने उस से पूछा।

"मेरी मौसी वहाँ रहती हैं," वह बोला।

"और तुम्हरे माता पिता ?

"वे जी, दंगे के दिनों में मारे गये थे ?

क्षणभर रुक कर मैंने फिर उस से पूछा, "बीना में तुम किस के पास रहते थे ?'

" जिन के घर में नौकरी करता था जी, उन्हीं के पास रहता था। अब नौकरी छोड़ कर मौसी के पास जा रहा हूं।"

" अब वहीं रहोगे ?'

"हाँ जी। मौसी ने मुझे चिट्ठी लिख कर बुलाया है। मेरे मौसा गुजर गये हैं। चार चार पाँच पाँच साल के दो बच्चे हैं। घर में और कोई कमाने वाला नहीं है। मैं तो यहाँ भी नौकरी करता था, वहाँ भी नौकरी कर लूंगा। रोटी और दस पन्द्रह रुपये मिल जायेंगे। अपने लिए तो मुझे रोटी ही चाहिए। रुपये मैं मौसी को दे दिया करूंगा।"

वह बड़े आत्म-विश्वास के साथ बात कर रहा-था। उतनी सी आयु में वह स्वावलम्बी ही नहीं, एक परिवार का सहायक होने का दावा रखता है, यह बात प्रशंसनीय थी-साथ ही हृदय को कचोटने वाली भी।

" तुम्हें बम्बई जाते ही नौकरी मिल जायेगी ? " मैं ने पूछा।

"जब तक जी, नौकरी नहीं मिलेगी,कोई और काम कर लूंगा।" वह बोला।

'और तुम क्या काम कर सकते हो ?"

" भार उठा सकता हूं।"

मैंने उसे सिर से पैर तक देखा, वह अपनी पतली पतली बाँह से कोई भार उठा सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

"तुम कितना भार उठा सकते हो?" मैं ने पूछा।"

"जी, ज्यादा नहीं उठा सकता। छोटा सामान उठा सकता हूं।" फिर वह मुस्कराकर बोला, "मैं उतना छोटा नहीं हूं जी, जितना देखने में लगता हूं।"

"कितनी उम्र है तुम्हारी?" मैंने पूछा।

" सोलह साल।"

"सोलह साल।" मैंने अविश्वास के साथ कहा,। "तुम्हें ठीक पता है कि तुम्हारी उम्र सोलह साल है?"

लड़के ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया "जी मैं पार्टीशन से पहले पत्तोकी में पाँचवीं जमाअत में पढ़ता था।"

फिर उसने बतलाया कि किस तरह वह पाकिस्तान से बचकर आया। जिस समय उन के घर पर हमला हुआ, उस के माता पिता ने उसे आटे वाले ड्रम में छिपा दिया था। सौभाग्यवश ड्रम का ढकना उठाकर नहीं देखा गया और उस की जान बच गई। फिर वह किसी तरह एक काफिले के साथ जा मिला और भारत पहुंच गया। जहाँ तीन वर्ष शरणार्थी कैम्पों में रहा—। फिर उसे एक घर में नौकरी दिला दी गयी। वे लोग उसे अपने साथ बीना ले आये। उसे वे कभी नियमित रूप से वेतन नहीं देते थे। कभी कह देते कि उसे जो कपड़े दिए गए हैं, उन में उस के पैसे कट गये, कभी कह देते कि वह जो दो दो चार चार आने लेता रहता है, वे वेतन से अधिक हो जाते हैं, और कभी कह देते कि उस के नाम उन्हों ने लॉटरी डाल दी है, जिस में हो सकता है उस का लाख रुपया निकल आये। नौकरी छोड़ने पर उन्हों ने उस का हिसाब करके उसे चार रुपये दिये थे।

"तुम मौसी के पास पहले क्यों नहीं चले गये?" मैंने पूछा।

"पहले तो जी, मुझे उनका पता ही नहीं था," वह बोला, "बीना में एक वतनी मिला तो उससे पता चला कि वे बम्बई में चेम्बूर कैंप में हैं। मैंने तब उन्हें लिखकर पूछा था कि वे कहें तो मैं भी बम्बई आ जाऊं। पर मौसा ने मुझे तब लिखा था कि मुझे मिली हुई नौकरी छोड़नी नहीं चाहिए। वे मौका देखेंगे तो मुझे आप बुला लेंगे।"

फिर कुछ रुककर उसने पूछा, "क्यों जी, मुझे टी. टी. उतार तो नहीं देगा?"

"लगता तो नहीं कि उतार देगा," मैंने कहा।

"तो मैं जरा लेट जाऊँ। मुझे लगता है, मुझे बुखार हो रहा है।"

मैंने उसका शरीर छूकर देखा। उसे सचमुच कुछ हरारत थी। मैं अपने पहले स्थान पर जा बैठा, और वह लेट गया। मेरा दिल अब पुस्तक पढ़ने में नहीं लग रहा था।

गाड़ी जब होशंगाबाद स्टेशन पर रुकी तो वह सो रहा था। खिड़की से बाहर झाँककर देखते हुए मुझे पास के एक कम्पार्टमेंट में अपनी यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर दिखाई दे गये। मैं उतर कर उनके पास बात करने के लिए चला गया। वह शिक्षा-कांफ्रेंस का सभापतित्व करके आ रहे थे और अब बम्बई जा रहे थे। पहले वह उस कांफ्रेंस के विषय में बताते रहे। फिर मुझसे मेरी यात्रा के विषय पूछने लगे। फिर अपनी हाल ही की यूरोप यात्रा का विवरण सुनाने लगे। परिणाम यह हुआ कि गाड़ी चल दी और मैं उनके डिब्बे में ही रह गया।

इटारसी स्टेशन पर मैं अपने डिब्बे में लौटकर आया तो भीड़ पहले से बढ़ रही थी। अपने स्थान पर पहुँच कर मैंने देखा कि वह

लड़का अपनी सीट पर नहीं है। मैंने बैठकर एक साथ वाले व्यक्ति से उसके विषय में पूछा। उसने बताया कि टी. टी. आई ने उसे होशंगाबाद स्टेशन पर ही उतार दिया था।

रंगोबू

बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर उतरकर मुझे यह नहीं लगा कि मैं दो वर्ष बाद वहाँ आया हूं। कुछ ऐसा ही महसूस हुआ जैसे मैं बम्बई में ही रहता हूं, दादर से आया हूं, रोज ही इस तरह आता हूँ और वहाँ के जीवन से बुरी तरह ऊबा हुआ हूं। स्टेशन पर ही बम्बई के जीवन की पूरी झलक दिखाई दे गई—सूखे शरीर, मुरझाए हुए चेहरे, जल्दबाजी और वह कुछ खोकर उसे ढूंढने की हताश चेष्टा का-सा जीवन। एक चीज जो स्टेशन से ही मेरा पीछा करने लगी, वह थी मछली की गन्ध। मैं निरामिष भोजी नहीं हूं परन्तु मछली की गन्ध मुझसे कभी बर्दाश्त नहीं होती। विक्टोरिया टर्मिनस के सर्बबन भाग में इतनी मछलियाँ उतरी हुई थीं। (मतलब, टोकरियों में भरी हुई वहाँ उतारी गई थी), कि मेन स्टेशन की चाय-स्टाल पर चाय पीते हुए मुझे लगा कि मछली की गन्ध मेरी चाय में से आ रही है। मैं चाय की प्याली आधी भी नहीं पी सका।

बस में बैठने पर पास ही कहीं से फिर वही गन्ध आ रही थी। बम्बई में बसों में मछली की टोकरियाँ ले जाने की इजाज़त नहीं है। इसलिए मैंने आश्चर्य के साथ चारों ओर देखा कि गन्ध कहाँ से आ रही है। वैसे देखने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि गन्ध मेरे पास बैठी हुई दो मत्स्यगन्धा युवतियों के शरीरों में से आ रही थी। वे

शायद वारसोवा के किसी मछलीमार परिवार से सम्बन्ध रखती थीं।

दूसरे दिन मैं अपने मित्र धर्म से मिलने नैशनल स्टैण्डर्ड के दफ़्तर गया। पूरे दो वर्ष बाद अचानक मुझे सामने देखकर धर्म के चेहरे पर वैसा ही भाव आया जैसे रोज़ दिखाई देने वाले किसी चेहरे को देखकर आ सकता है। यह उदासीनता भी बम्बई के जीवन की विशेषता है। धर्म ने मुझे बैठाया, बिना पूछे कि मैं पानी पिऊंगा या कुछ और नौकर से चाय लाने के लिए कह दिया और आप टेलिफोन पर सट्टा-बाजार के भाव पूछता रहा।

वहां बैठ कर भी मुझे मछली की गन्ध आने लगी। एक अखबार के दफ़्तर में मछलियां कहां हो सकती हैं यह मेरी समझ में नहीं आया। जब धर्म ने टेलिफोन का चोंगा रख दिया तो पहली बात मैंने उससे यही पूछी कि मछली की गन्ध कहां से आ रही है। उसने बिना मेरे प्रश्न को महत्त्व दिये सरसरी तौर पर उत्तर दिया कि यदि मछली की गन्ध आ रही है तो वह समुद्र में से ही आ रही होगी, क्योंकि समुद्र बहुत पास है। मैं कह नहीं सकता कि उसने ठीक बात कही थी या मुझे ब्लफ़ किया था, या उस समय भी सट्टा-बाज़ार उसके दिमाग़ पर सवार था।

जितनी मुझे इस गन्ध के कारण झुंझलाहट हुई, वह सारी उस शाम को एक्वेरियम में मछलियां देख कर दूर हो गई। दो साल पहले बम्बई में एक्वेरियम नहीं था, अतः मेरे लिए वह एक नई चीज़ थी। वहां जाकर एक बार हृदय और आंखों में विस्फार आ गया।

दीवारों के साथ शीशे के बड़े बड़े केस बने हुए थे। मछलियां केंकड़े और इन्हीं श्रेणियों के कुछ दूसरे जीव अपने अपने केस में इठला रहे थे। वह उनके लिए स्वाभाविक रूप से रहना है जो हमारी आंखों को इठलाना नज़र आता है। हर केस को अलग अलग तरह की पृष्ठभूमि देकर अलग अलग रंग की रोशनी से आलोकित किया गया

था। मैं मछलियों और केकड़ों के नाम भूल गया हूं। केवल उनके रंगों और उनकी लचक की कुछ याद रह गई है—चौड़े, परन्तु छोटे आकार की मछलियाँ, जिनके मुंह से निकल कर रेशमी डोरे से पीछे की ओर फैल रहे थे, एक नर्तकी के लचकते हुए शरीर से कई गुना अधिक लचकती हुई नाना चित्रकार रंगों की डेढ़ डेढ़ दो दो फुट की मछलियाँ, सामूहिक रूप से एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर जाती हुई नाना आकारों की मछलियाँ—नाखून भर के आकार तक की, मुंह खोलकर सांस लेती हुई भगत मछलियां, जिन्हें यह नाम शायद इसलिए दिया गया है उनके मुंह के खुलने और बन्द होने में वैसी ही चेष्टा रहती है जैसी राम नाम के उच्चारण में, और अन्यान्य कई रहत की मछलियां! मैं फूलों और तितलियों को देख कर ही सोचा करता था कि रंगों के इस वैचित्र्य की सृष्टि करने वाली शक्ति के पास कितनी सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि होगी। परन्तु नाखून नाखून भर की मछलियों के कलेवर में रंगों की योजना देख कर तो जैसे इस विषय में सोचने से ही रुक जाना पड़ा।

बुद्धिशून्य तत्त्व

पश्चिमी घाट की छोटी छोटी पहाड़ियाँ और घाटियाँ तीव्र गति से निकलती जा रही थी। जगह जगह पहाड़ियों को मिलाते हुए रेल के पुल आ जाते थे, जिन्हें देख कर एक विशेष तरह के पुल का अनुभव होता था। पूना एक्सप्रेस की खिड़की एक चौखट की तरह थी जिसके पीछे का चित्र निरन्तर गतिशील था। गहराई एक ओर से ऊपर को उठने लगती और पहाड़ी का रूप

ले लेती। पहाड़ी का शिखर एक ओर से बैठने लगता और एक घाटी में बदल जाता। मिट्टी पानी को स्थान देकर हट जाती और पानी उभरी हुई चट्टानों के लिए स्थान कर देता।

पहले मेरा विचार था कि बम्बई से गोआ तक की यात्रा जहाज़ से करूँगा। परन्तु जहाज़ पहली तारीख़ को जाने वाला था। और मैं बम्बई में और नहीं रहना चाहता था, इसलिए मैंने पूना होते हुए गाड़ी से जाने का निश्चय कर लिया और सवेरे बम्बई से पूना एक्सप्रेस पकड़ ली। अब मैं गाड़ी में बैठा हुआ बाहर दूर दूर तक फैले हुए घाट के प्रदेश को देख रहा था। घाट के प्रदेश में हरियाली का असली लालित्य प्रकट होता है। समतल भूमि पर हरियाली बहुत सपाट हो जाती है—उसमें वह लालित्य नहीं रहता। ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर ऊँचाई उस लालित्य पर छाई रहती है। यहाँ भूमि की हल्की हल्की करवटों पर हरियाली अपनी पूरी मस्ती में बिखरी हुई देखी जा सकती है।

कुछ देर बाद मेरा ध्यान गाड़ी में बैठे हुए दो आदमियों की बातचीत की ओर आकृष्ट हो गया। एक जो थोड़ा मोटा था और चेहरे के भाव से बुद्धिशून्य-सा लगता था, दूसरे से पूछ रहा था, "तो पूने में कौन कौन सी चीज़ देखने की हैं ?"

"वही चीज़ जो बम्बई में है," दूसरे ने, जिसे स्पष्ट ही उसकी बातचीत में रुची नहीं, थोड़ा झुंझला कर उत्तर दिया।

"वही चीज़ कैसे हो सकती है साहब," बुद्धि शून्य तत्त्व जो स्वर और आकृति से सिन्धी लगता था, बोला "हर शहर की अपनी अपनी रौनक की जगह होती है, कोई बड़ा मन्दिर होता है, कोई बड़ा कारखाना होता है।"

"हाँ साहब हाँ, होता है," दूसरा व्यक्ति जो गुजराती था, थोड़ा

और भी झुंझला कर बोला, "सड़क होती है, डाकखाना होता है, चिड़ियाघर होता हैं। यह सभी कुछ पूने में हैं।"

'तो फिर पूने में तो अपनी तरह का होगा न," बुद्धि शून्य तत्त्व बोला, "हमारे उधर कराँची में भी सड़कें थी, डाकखाना था, पर इधर की चीज़ और उधर की चीज़ एक ही तो नहीं है न!"

फिर उसने दूसरों को सम्बोधित करके कहा,

"क्यों जी, जब इन्सान-इन्सान एक नहीं होता, औरों की तो बात छोड़ो। भाई से भाई मेल नहीं खाता, एक हाथ की पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं, तो फिर और चीजें कैसे एक सी हो सकती हैं? दुनियाँ में कोई दो चीजें कभी एक सी नहीं होती। हमारे उधर कराची में......"

गुजराती उसकी फिलासफी से तंग आ गया था। वह उसे बीच में ही काटकर बोला, "क्यों भाई साहब कभी रेस खेलने जाते हो?"

"क्यों नहीं जाता हूं," वह बोला, " रेस पर जाता हूं, महालक्ष्मी में एक स्टूडियो है, वहाँ फिल्म की शूटिंग देखने भी जाता हूँ।"

गुजराती फिर उसकी बात काटकर बोला, "देखो रेस में वही घोड़ा बम्बई में दौड़ता है, वही घोड़ा पूने में दौड़ता है। वही लोग इधर पैसा गंवाता है, वही लोग उधर पैसा गंवाता है। है कि नहीं?"

बुद्धिशून्य तत्त्व ने क्षणभर सोचा-और-फिर यह समझकर कि उसे उलझाने की कोशिश की जा रही है बोला, "हमतो पूने की रेस में कभी नहीं गया। दो तीन सौ गंवाया है सो इधर बम्बई में ही गंवाया है या फिर हमारे उधर कराची में" और वह फिर कराची के विषय में लम्बी चौड़ी बात सुनाने लगा। गुजराती ने उधर की खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया। मैं इधर बाहर की हरियाली को देखने लगा।

मनुष्य की एक जाति

पूना से लंडा के लिए गाड़ी रात को मिलती थी, अतः मुझे कई घन्टे पूना स्टेशन के थर्ड क्लास वेटिंग हाल में बिताने पड़े। धूप बहुत थी, अतः कहीं घूमने भी नहीं जा सकता था। काफी देर तक तो मैं इधर उधर टहलता रहा। फिर एक बेंच पर बैठ गया। आस पास बहुत से लोग बैठे थे, जैसे हर स्टेशन पर थर्ड क्लास के वेटिंग हाल में दिखाई दे जाते हैं। मेरा ध्यान उनमें एक विशेष श्रेणी के मनुष्यों की ओर आकृष्ट हुआ। यह विशेष श्रेणी भी हमारे यहाँ मनुष्यों की एक परिचित श्रेणी है। इनकी विशेषताएँ हैं, काली रूखी पड़ी हुई चमड़ी, सूखे से हाथ पैर, किसी के बड़े बड़े उलझे हुए बाल और बढ़ी हुई दाढ़ी, किसी के चीथड़े चीथड़े वस्त्र, किसी के गले हुई अंग, किसी की लाल लाल आँखों की विक्षिप्त सी मुद्रा और फिर सब के रोम रोम में एक ही भाव पूर्ण शैथिल्य। यह शैथिल्य शरीर पर बुद्धि के नियंत्रण के अभाव को प्रकट करता है, क्यों यह एक सा भाव इन सब व्यक्तियों में आ जाता है? यह शैथिल्य जीवन में चरम हताशा का ही प्रकट परिणाम नहीं है? यह सामूहिक हताशा क्यों जन्म लेती है। ये व्यक्ति भी तो हमारा समाज है। उस के गले सड़े रूप के प्रतीक—उसके दोषपूर्ण कृतित्व क कुछ अनिवार्य उदाहरण! इनकी संख्या थोड़ी नहीं है। ये रात को फुटपाथों पर सोये मिलते हैं, और दिन में धूल मिट्टी में रमते हुए दिखाई देते हैं। जिस समाज के ये अंग हैं, क्या उसे सभ्य समाज कहा जा सकता है?

मेरे पास ही इस श्रेणी के एक परिवार के तीन सदस्य बैठे थे। एक पुरुष था और दो स्त्रियाँ जिनमें से एक अभी युवा थी। पुरुष अपने डंडे के ऊपर टाँग फैलाये बिलकुल निढाल सा बैठा था। बड़ी स्त्री जो अट्ठाईस या तीस वर्ष की रही होगी उकड़ूँ होकर बैठी थी

और मुंह में कुछ चबा रही थी। ये दोनों समाज की गलाने वाली प्रक्रिया में से पूरे गुजर चुके थे। युवा स्त्री, जो अट्ठारह से बाईस के बीच की रही होगी, अभी उस प्रक्रिया में से गुजरने की आरम्भिक अवस्था में थी। महाराष्ट्री युवतियों की आँखों में जो सौम्य-उत्फुल्ल-मदिर भाव रहता है, वह उस की आँखों में भी था, यद्यपि उस भाव में निराशा और व्यथा का भाव मिला हुआ था। वह एक बोरी से सिर टिकाये लेटी हुई थी। उसकी त्वचा में कसाव था, परन्तु अंग अंग में वही शैथिल्य भर रहा था, जो उसकी हर चेष्टा में व्यक्त हो जाता था। पाँच छः वर्ष में ही शायद वह भी उस बड़ी स्त्री जैसी ही हो जाएगी। तब उसका स्वस्थ जीवन में लौट आना संभव नहीं होगा।

कुछ लोग कहा करते हैं कि ये लोग जान बूझकर अपने को ऐसा बना लेते हैं, जिस से उन्हें आसानी से भीख मिल सके। मनुष्य अपने आप को जान बूझकर इतनी पीड़ा दे सकता है, यह कहने से पहले स्वयं अपने को वैसी पीड़ा देने की कल्पना की जाय तो पता चल जायगा कि इस तरह अपने को पीड़ा देने का क्या अर्थ है। जिस शरीर के पालन के लिए ये भीख माँगना चाहते हैं उसी शरीर को ये इस तरह हीन और गलित क्यों बना लेते हैं? भीख माँगना कोई जीवन का आराम नहीं है, जिसके लिए ये अपने शरीर की कुर्बानी करते हैं और नहीं उससे वे ईसा मसीह बन जाते हैं। यदि ये ऐसा करते हैं तो इनके जीवन में कितनी हताशा, कितनी पीड़ा और कितनी निरीहता है, उसकी कल्पना की जा सकती है।

इन तीन प्राणियों के बिल्कुल पीछे रेलवे का बोर्ड लगा था, मदद चाहिए? बोर्ड के पास गाइड की कुर्सी रखी थी, जिस पर उस समय कोई नहीं था।

लाइटर, बीड़ी और दार्शनिकता

वहाँ एक बड़ी संख्या गोआ जाने वाले ईसाई यात्रियों की थी। गोआ में उन दिनों सेंट फ्रांसिस जेवियर्स के मृत शरीर का प्रदर्शन-एक्सपोजीशन—चल रहा था। देश के विभिन्न भागों से लाखों संख्या में यात्री वहाँ आ रहे थे। पूना के वेटिंग हाल में उस समय सौ दो सौ व्यक्ति गोआ जाने वाले थे, जिनकी वजह से वहाँ कुछ चहल पहल थी। ज्यों ज्यों शाम होती जा रही थी, उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। बुकिंग आफिस की खिड़की खुलने से घन्टा भर पहले ही लोग उस के बाहर जमा होने लगे। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, वहाँ दो क्यू साथ साथ बन रहे थे। मैंने एक क्यू में सब से पीछे खड़े एक गोआनी सज्जन से पूछा कि मार्मुगाव का टिकट लेने के लिए मुझे किस क्यू में खड़े होना चाहिए उन्होंने सौजन्य पूर्वक मुस्करा कर बतलाया कि मुझे उनके पीछे खड़े हो जाना चाहिए।

खिड़की खुलने में अभी कुछ समय रहता था। ऐसे अवसर पर जैसा कि स्वाभाविक होता है, वे गोआनी सज्जन पीछे की ओर मुंह करके मुझसे बात करने लगे। उन्होंने मेरा, नाम पता, और व्यवसाय पूछा-। शिष्टाचार वश मैंने भी उनका नाम पूछा।

"मेरा नाम ए. फर्नांडिस है, उन्होंने कहा , ए. एल., फर्नांडिस, एलबर्ट लोनार्ड फर्नांडिस।'

"आप यहाँ किसी होटल में काम करते हैं?" मैंने पूछा। मैं यह प्रश्न अनायास ही पूछ गया, क्योंकि मैंने तब तक गोआनी केवल होटलों में साज बजाते ही देखे थे और मेरी यह धारणा थी कि वे सब पश्चिमी वाद्य संगीत के ही विशेषज्ञ हैं। परन्तु मिस्टर फर्नांडिस ने बताया कि वे वहाँ एकाउंटस में सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं।

मैंने अपने आप को धन्यवाद दिया कि मैंने उनसे यही नहीं पूछ लिया कि आप कौनसा साज बजाते हैं !

वे गोआ के मर्जर के विषय में बात करने लगे। उनका मत था कि गोआ को भारत में सम्मिलित हो जाना चाहिए, पर साथ ही उन्हें यह डर भी था कि बम्बई के सेठ लोग गोआ को बेचकर न खा जाएं। उनका विचार था कि जब तक पण्डित नेहरू हैं, तब तक तो कोई डर नहीं, परन्तु उनके बाद ये बम्बई के सेठ लोग क्या करेंगे या दूसरे लोग उन सेठ लोगों—का क्या करेंगे। यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

'वट से यू' ? उन्हों ने पूछा। मिस्टर फर्नांडिस शुद्ध अंग्रेजी बोलते थे परन्तु बार बार वट यू से की जगह के वट से यू का प्रयोग कर जाते थे।

उन्होंने एक बीड़ी मुंह से लगाई और जेब से बढ़िया सा लाइटर निकाल कर—उससे बीड़ी सुलगाते हुए बोले, "दिस इज द डिफ्रेंस बिटवीन इन्डिया एन्ड गोआ। इन इन्डिया माई मनी कैन बाई मी ओन्ली दीज बीडीज। इन गोआ द सेम मनी कैन गेट मी गुड सिगरेटस। दिस लाइटर आई बाट देयर।"

अपना सफेद सोला हैट सिर पर जरा ठीक करके वे फिर बोले, "चीपर स्लोगन्ज एन्ड हायर प्राइसेज, दैट इज व्हट ऐन ऐवरेज गोअनीज़ विल गेट आऊट आफ दिस मर्जर बट आइल वोट फार इन्डिया आल द सेम।"

दोनों क्यू लम्बे होते जा रहे थे। क्यू में खड़े कुछ युवकों और युवतियों का उत्साह उमड़ा पड़ रहा था। आने वाले न्यू इयर डे की सद्भावनाएँ शायद उन्हें गुदगुदा रही थी। वे कुछ गीतों के अंश गा

रहे थे या एक दूसरे के कंधों को पकड़कर उछल रहे थे या क्यू में ही नाचने का पोज लेकर लय के साथ थिरक रहे थे।

मिस्टर फर्नांडिस बोले, "देयर आर टू मैनी प्रौब्लम्ज एंड फार मैनी स्लोगन्ज इन द वर्ल्ड। द होल ट्रबल इज दैट वी आर गेटिंग वाइज़र-एवरी डे। चाइल्ड आव टु डे इज वाइजर-दैन द चाइल्ड आव येस्टरडे। दैट इज वट इज रॉंग विद द वर्ल्ड। वट से टू यू!"

"वट आइ से।" उन्होंने इधर उधर देखा और रहस्य की बात बताने के ढंग से थोड़ा मेरी ओर को झुककर बोले—, 'दिस इंक्रीज़िंग विज्डम इज फास्ट मेकिंग फ़िलासोफर्ज आव् मेन एन्ड प्रास्टी च्यूटस आव् विमेन। वट से टू यू?"

इनकी इस दार्शनिकता से मैं मुस्करा दिया। परन्तु मिस्टर फ़र्नांडिज़ के चेहरे पर मुस्कराहट की कोई रेखा नहीं आई।

उसी समय हमारे वाला क्यू सहसा टूट गया। बुकिंग आफिस की खिड़की खुल गई थी और टिकट देने वाले बाबू ने एक ही क्यू को वैधानिक मानकर उसी में खड़े व्यक्तियों को टिकट देना आरम्भ कर दिया था। इस खलबली में मैं क्यू के अन्तिम सिरे पर पहुँच गया। मिस्टर फ़र्नांडिस से फिर साक्षात्कार नहीं हुआ।

चलता जीवन

दूसरे दिन लोंडा स्टेशन पर गाड़ी बदल कर मैंने टाइम टेबल देखा। लोंडा से मामुंगाँव तक कुल छियासी मील का सफ़र था जिसमें साढ़े आठ घण्टे समय लगने जा रहा था। मैंने देखा कि गाड़ी कासलराक स्टेशन पर लंच के समय पहुंचती है और वहाँ लगभग दो घण्टे ठहरती है। फिर कालेम स्टेशन पर चाय के समय पहुंचती है और वहाँ भी लगभग उतना ही समय ठहरती है। मैंने सोचा कि

अच्छा है इस तरह मुझे रास्ते के दो स्थान भी घूमकर देखने का अवसर मिल जायगा ।

गाड़ी में मेरे साथ दो नीले कोटों वाले व्यक्ति आ बैठे थे। इनमें से एक का सिर पूरा घुटा हुआ था। वे जाने मराठी बोल रहे थे या कोंकणी या कोई और भाषा। मराठी खैर नहीं थी, क्योंकि मराठी मैं थोड़ी बहुत समझ लेता हूं। यह भाषा दक्षिण की भाषाओं की तरह मूर्धन्य बहुल थी परन्तु दक्षिणी भाषाओं में से नहीं थी। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि वह उनकी अपनी भाषा है और अपना गांव उन्होंने बम्बई से आस पास ही कहीं बतलाया। उस भाषा को बोलते समय उनके कंठ ऐसे हिलते थे जैसे ट्रिगर लगातार ऊपर नीचे हो रहे हों और शब्द इस तरह ध्वनित होते थे जैसे स्टेनगन शब्द कर रही हो। वे ईसाई थे और एक्सपोज़ीशन देखने के लिए ओल्ड गोआ जा रहे थे। उनकी जिस चीज़ ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया वह थी कि वे केवल एक एक कान में सोने की मोटी बाली पहने हुए थे।

"यह बाली किसलिए पहनते हो?", मैंने उनमें से एक से अंग्रेजी में पूछा।

"हमारे उधर का रिवाज है," उसने उत्तर दिया।

"मगर एक कान में ही क्यों पहनते हो, दूसरे कान में क्यों नहीं?"

"यही रिवाज है," उसने उत्तर दिया।

"क्या इस रिवाज का कोई विशेष कारण या आधार है?"

"ऐसे ही चला आ रहा है," उसने उत्तर दिया। मैं इससे आगे नहीं बढ़ सका।

गाड़ी के कासलरॉक पहुँचने तक मुझे काफी भूख लग आई थी। गाड़ी जिस समय कासलराक पहुंची, मैंने स्टेशन पर उतरने के लिए

गाड़ी का दरवाजा खोला, परन्तु एक पुलिसमैन ने आकर मुझे अन्दर रहने का आदेश दिया और दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया। अब मुझे अपने सहयात्रियों से मालूम हुआ कि वहाँ गाड़ी दो घण्टे इसलिए ठहरती है कि भारतीय कस्टमूज की ओर से वहां सबके सामान की जाँच पड़ताल की जाती है। जब तक जांच पड़ताल पूरी न हो जाय, हम गाड़ी से नहीं उतर सकते। यह भी पता चला कि कालेम स्टेशन पर फिर पोर्चुगीज कस्टमूज की ओर से जाँच पड़ताल होती है। इसीलिए वहां भी दो घण्टे लगते हैं।

नीले कोटों वाले अपने लंच पैकेट साथ लाये थे। उन्होंने अपने ढोसे, सैंडविच, डबलरोटियाँ, अंडे और सासिज वगैरह निकाल लिये और खाने लगे। पानी की बोतल दोनों के पास एक ही थी, जिसमें से वे बारी बारी से पानी पीते थे। दो घूंट तू, दो घूंट मैं, कुछ ऐसा उनका पानी पीने का ढंग था। उनसे यदि इस विषय में पूछा जाता तो शायद फिर वही उत्तर मिलता कि उधर का ऐसा ही रिवाज है।

वहां सामान की चेकिंग में विशेष दिक्कत नहीं हुई। वहां से गाड़ी चली तो दूधसागर के जल प्रपातों की चर्चा होने लगी। वे जल प्रपात कासलराक और कालेम के बीच पड़ते हैं और गोआ के दर्शनीय स्थानों में गिने जाते हैं। गाड़ी में बैठे बैठे तीन चार बार ये जल प्रपात विभिन्न कोणों से देखे जा सकते हैं। पहली बार गाड़ी इनके बहुत पास से निकलती है। परन्तु दूर से देखने पर ये अधिक अच्छे लगते हैं। पानी चार पांच धाराओं में विभक्त होकर नीचे गिरता है और लगता है कि पहाड़ के वक्ष पर पानी की रेखाओं से एक नक्शा खींचा गया है।

गाड़ी में जितने लोग बैठे थे, सभी जल प्रपातों को हर कोण से देखने के लिये आतुर थे। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति मनुष्य का आकर्षण

कुछ चुने हुए सहृदय व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं। जिन्हें यह आकर्षण नहीं खींचता, शायद ऐसे व्यक्ति अपवाद हैं।

कालेम पहुँचकर पता चला कि वहां सामान की चेकिंग ही नहीं, अपनी डाक्टरी परीक्षा होगी। जैसी डाक्टरी परीक्षा मैंने वहां देखी, वैसी पहले कभी नहीं देखी थी। सुना है एक आला होता है जिसमें यह पता चल जाता है कि व्यक्ति सच बोल रहा है या झूठ। एक और भी आला सुना जाता है जिससे पता चल जाता है कि व्यक्ति के पास सोना है या नहीं। कालेम के डाक्टर का हाथ किसी ऐसे आले से कम नहीं था क्योंकि वह हर व्यक्ति की कलाई से अपनी दो उंगलियों को छुआकर क्षण भर में जान लेता था कि उसे कोई रोग है या नहीं।

एक मजेदार बात यह थी कि जो लोग सामान की चेकिंग करने आये, वे न तो ठीक से अंग्रेजी बोल समझ सकते थे, न हिन्दी। वे कोंकणी जानते थे या पोर्चुगीज। जिस व्यक्ति ने हमारी चेकिंग की उसे शायद अंग्रेजी के एक दो ही वाक्य आते थे जिनमें एक था नया है कि पुराना प्रकटतः उसके इस प्रश्न का सही उत्तर था—'पुराना।'

मेरे पास एक पैकट में दो तीन सौ शीट ख़ाली काग़ज़ थे। उसने उन्हें देखकर भी वही प्रश्न पूछा। मैंने उसे समझाने की चेष्टा की कि ये कोरे कागज हैं, पर मेरे इस्तेमाल के हैं, परन्तु वह नहीं समझा। उसने फिर पूछा, "नया है कि पुराना?"

अबके मैंने एक शब्द में उत्तर दिया, "पुराना"।

उसने हस्ताक्षर कर दिये।

दूसरा वाक्य उसे आता था—'इसमें क्या है?'

उसने मेरे बेडिंग को देखकर पूछा, "उसमें क्या है?"

"बिस्तर" मैंने कहा।

"उसमें क्या है ?"

"गद्दा, तकिया, चादर।"

"उसमें क्या है ?"

मैंने घूर कर उसकी ओर देखा। उसने उसपर भी हस्ताक्षर कर दिये।

कालेसे, जहां गोआ की लोहे की खाने हैं हमारे डिब्बे में आठ दस युवा जोड़े आ गये। वे बाहर से ही चहकते हुए आए थे और अन्दर आ कर भी उसी तरह चीखते, चहकते रहे। क्रिसमस सप्ताह चल रहा था और नया साल आने वाला था। उन्हें इस समय जीवन में किसी तरह का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं था। उन्होंने खिडकियां बन्द करके डिब्बे में बीस पच्चीस गुब्बारे छोड़ दिये और उनसे खेलने लगे। उनमें से अधिकांश ने—लड़कियों ने ही नहीं लड़कों ने भी बहुत सा सोना पहन रखा था। उन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे वहां लोहे की खानों में से लोहा नहीं, सोना निकलता है। गाड़ी के अन्दर रंग बिरंगे गुब्बारे उड़ रहे थे और बाहर नारियलों के घने घने झुंड निकलते जा रहे थे। जिधर मैं बैठा था, उधर नीचे एक घाटी चल रही थी, जिस में घने नारियल उगे हुए थे। इन नारियलों के शिखर उस ऊंचाई तक आते थे जिस ऊंचाई पर गाड़ी चल रही थी, जिससे लगता था कि वे शिखर जमीन की सतह का ही एक भाग हैं, जहां घाटी कम गहरी होती, वहां शिखर जमीन से जरा जरा उठे हुए दिखाई देते और फिर ऊंची जमीन आ जाने पर वे शिखर आकाश में चले जाते। दोनों ओर से घने नारियलों से ढकी हुई एक नहर निकल गई जिसमें एक नाव चल रही थी। इस तरह घने नारियलों की छाया में नाव की वह यात्रा गाड़ी से देखने पर बहुत रोमांटक लगी—जैसे चित्रपट पर वह सुन्दर दृश्य क्षण भर के लिए

आया और हट गया ! गाड़ी कितनी आगे निकल आई थी—परन्तु नाव अभी शायद गाड़ी के पुल तक भी नहीं पहुँची थी ।

गाड़ी में गुब्बारों का खेल खूब गरम हो रहा था, जब साँवर्दें स्टेशन आ गया, जहां पर उन युवकों और युवतियों को उतरना था। स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही दो तीन स्त्रियां कम्पार्टमेंट के दरवाजे के बाहर आकर खड़ी हो गईं । वे वहां की पोर्टर थीं । एक उतरने वाली स्त्री ने उनमें से एक को अपना ट्रन्क और बिस्तर उठाने को दे दिया । उठाने वाली उठवाने वाली से देखने में कहीं अधिक अच्छी थी । उसकी धोती और कुर्ती दोनों ही मैली थीं, और हाथों पैरों में उसने कुछ नहीं पहन रखा था । वह वहां के उस वर्ग में से थी, जिसके लिये लोहे की खानों में से लोहा भी नहीं निकलता ।

वास्को से पंजिम तक

मामुंगांव गोआ का टर्मिनस स्टेशन है। वहां से पंजिम जाने के लिए फेरी (एक तरह की बड़ी नाव) लेनी पड़ती है। मैंने सोचा था कि रात मामुंगाव में रह कर सबेरे फेरी से पंजिम चला जाऊंगा। परन्तु मामुंगाव से दो स्टेशन पहले गाड़ी में एक महाराष्ट्री युवक धारवाड़कर से परिचय हो गया, जिसने बतलाया कि मुझे रात के लिए मामुंगाव न ठहर कर वास्को ठहरना चाहिये। वास्को या वास्कोडि-गामा मामुंगाव से पहला स्टेशन है। वह वहीं पर रहता था। उसने यह भी कहा कि मुझे कुछ दिन गोआ में रहना हो तो उसके लिए भी उपयुक्त जगह वास्को ही है, पंजिम नहीं।

उसने अनुरोध किया कि मैं कम से कम एक रात के लिए वास्को में उसका मेहमान बन कर रहूं; सबेरे वह मुझे मामुंगाव ले जाकर वहाँ से पंजिम की फेरी में बैठा देगा।

उस रात मैं वास्को में ही रह गया। धारवाड़कर एक साधारण क्लर्क था। उसके घर में उसके अतिरिक्त उसकी मां और पत्नी ये दो ही व्यक्ति थे। उसका विवाह हुए अभी दो ही महीने हुए थे। धारवड़कर के चरित्र में यह विशेषता थी कि जहां वह एक अपरिचित व्यक्ति के लिए हर तरह का कष्ट उठाने को तैयार था, वहां वह अपनी पत्नी से काम लेने में मध्यकालीन पति का दृष्टिकोण रखता था। आरंभ से गोआ में ही रहने के कारण उसे कोंकणी ही आती थी—अंग्रेजी के वह छोटे छोटे वाक्य ही बना पाता था। मैंने उससे कहा कि मैं अपने लिये नहाने का पानी कुएँ से खींच लूंगा, तो वह बोला, "नो। अवर वाइफ़ ऽज़ इट।" मैंने शेव करके अपना सामान धोना चाहा तो उसने वह मेरे हाथ से ले लिया और बोला, 'नो, अवर वाइफ़ ऽज़ इट !" घर की सीमाओं के अन्दर किये जाने का जो भी काम होता, चाहे वह मेहमान के सूटकेस को यहां से वहां रखना ही क्यों न हो वह सारा उसकी दृष्टि में उसकी पत्नी के धर्मक्षेत्र में आता था। वैसे वह बहुत नेक स्वभाव का युवक था।

रात को धारवाड़कर मुझे स्टेशन से सीधे अपने घर ले गया था। अतः वास्को शहर मैं उस समय ठीक से नहीं देख पाया था। वास्को मासुंगाव से दो मील इधर को है और मासुंगाव बन्दर पर आने वाले बेड़ों और जहाजों के यात्री यदि कुछ ख़रीदना चाहें तो उन्हें वास्को ही जाना पड़ता है। मासुंगाव अघनाशिनी नदी के मुहाने पर प्राकृतिक रूप से बनी हुई हार्बर है। वास्को, नदी और समुद्र के संगम के इस ओर पड़ता है, और वहां के छोटे से 'बीच' से टकराती हुई लहरें बड़ी शालीन-सी लगती हैं। यह बीच सड़क से आठ दस फुट नीचे है और सड़क के साथ साथ 'बीच' की ओर चौड़ी मुंडेर बनी हुई है। मुंडेर के पास से रात को मासुंगाव हार्बर में खड़े जहाज एक झील में बने

हुए छोटे छोटे घरों जैसे दिखाई देते हैं। दिन में धारवड़कर के साथ मैं पूरे वास्को में घूमा। वास्को की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। वह बहुत छोटा शहर है परन्तु बहुत खुला बसा हुआ है। वहां की कुल जन-संख्या आठ दस हजार से अधिक नहीं होगी, परन्तु उसका विस्तार काफी है। उसका निर्माण एक अच्छे आधुनिक शहर की तरह हुआ है। फिर वहां का जीवन भी अपेक्षाकृत शांत है। परन्तु मैंने पता किया तो वहां का एक साधारण सा होटल भी बम्बई के कई अच्छे अच्छे होटलों की अपेक्षा अधिक मंहगा था। कह नहीं सकता कि एक्स पोजीशन की वजह से ऐसा था या वहाँ के होटल मंहगे हैं ही। वास्तव में गोआ में शराब और कुछ और विदेश से आने वाली वस्तुएं सस्ती हैं। दैनिक जीवन के उपयोग की चीजें सस्ती नहीं हैं।

वास्को में—और फिर मैंने देखा कि गोआ में, सब जगह बहुत से रेस्टरां, क्लब और नाच घर केवल यूरोपियनों के लिए सुरक्षित हैं। गोआ पुलिस स्टेट है और वहाँ के नागरिक का स्टेट के संचालन में कोई हाथ नहीं। मिलिशीया तो पोर्चुगीज है, या नीग्रो। पोर्चुगीज सिपाही सड़क पर से निकलते हैं, तो उनमें कुछ वैसी ही अकड़ होती है जैसी किसी जमाने में भारत में रहने वाले अंग्रेजों में होती थी। वहां के नीग्रो सिपाही भी कुछ वैसी ही शान रखते हैं, जैसी अवि-भाजित पंजाब के यूनियनिस्टों की होती थी। पोर्चुगीज वहांकी सरकारी भाषा है। गोआ में हिन्दुओं और ईसाईयों की संख्या लगभग बराबर है। वे सब कोंकणी बोलते हैं। इनके बाद मुसलमान हैं, जो उर्दू भी बोल लेते हैं। परन्तु भाषा के विषय में गोआ गाइड में लिखा है, "यहाँ के हिन्दुओं और गरीब ईसाइयों की भाषा कोंकणी है। अमीर ईसाइयों की यह निशानी है कि वे घर पर भी पोर्चुगीज बोलते हैं। कुछ अंग्रेजी भी बोल लेते हैं ऐसा सुना जाता है—" इसका अर्थ

यह है कि कोंकणी गरीबों की भाषा है। पोर्चुगीज सम्मानित वर्ग की भाषा है। अंग्रेजी एक विदेशी भाषा है जिसे सम्मानित वर्ग के कुछ सदस्य व्यवहार में लाते हैं। लिखने की यह शैली ठेठ साम्राज्यवादी भाषा है।

वास्को में घूम कर हम मार्मुगाव जाने वाली सड़क पर चल पड़े। सड़क के किनारे दो एक जगह ऊंचे से चौतरों के साथ बने हुए छोटे छोटे घर थे जिनके आम बोर्ड लगे हुए थे कि वहा शराब मिलती है। इस तरह के 'बार' एक दम बेतकल्लुफ से लगते थे और शायद सौ पचास साल से चले आ रहे थे। उन्हें देखकर मुझे भोपाल के एक हम्माम की याद हो आई, जिसमें आज भी मुगलिया अन्दाज से लोग मालिश करवा के नहाते हैं। हां उस हम्माम जैसी गलीजमी इन शराब घरों में नहीं थी। पुरानी चीज का एक तो अपना रोमांस होता ही है, फिर उसका एक सांस्कृतिक पहलू और बन जाता है, जिससे उसके साथ सम्बंध रखना एक विशेष बात लगने लगती है। मैं नहीं जानता कि वास्को में 'बोहीमियन' सम्प्रदाय की कोई मजलिस है या नहीं। यदि होगी, तो ये शराब खाने अवश्य उन लोगों के अड्डे होंगे।

इसी सड़क पर आगे चल कर शिवाजी का किला है। यही किला आजकल अत्यन्त उपेक्षित अवस्था में है। किले के नीचे एक बड़ा सा क्रास लगा देखकर मैं तो समझा था कि वह कोई पुराना रोमन कैथलिक गिरजा है। हम किले के ऊपर चले गये। वहाँ पहुँचकर धारवड़कर का मराठा खून जरा जोश में आ गया और वह मुझे गोआ की विदेशी हुकूमत के विषय में बतलाने लगा। उसने बतलाया कि साधारण मनुष्य का जीवन वहां किस तंगहाली में बीतता है। कुछ

गिने चुने उद्योग हैं, जो कुछ उद्योगपतियों के हाथों में हैं। पोर्चुगीज देश के विकास या लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में कोई रुचि नहीं रखते। सस्ती शराब देकर वे शिक्षितवर्ग के मस्तिष्क को गुमराह किये हुए हैं। यही वजह है कि गोआ को भारत में मिलाने के लिए जैसा आन्दोलन होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा है। अनपढ़ आदमी की तो कोई आवाज़ ही नहीं है, और फिर वह अपने विषय में कुछ जानता भी नहीं। वह अपने को पुरखों से चला आ रहा मज़दूर समझता है और सोचता है कि उसका सतयुग शिवाजी के साथ बीत गया। पोर्चुगीज़ वहाँ से आयरन और मैंगनीज और अमरीका और जापान भेजते हैं और वहाँ से तैयार लोहा पचास गुना अधिक कीमतों पर मँगवाते हैं। अगर लोहे और मैंगनीज को वहीं तैयार किया जाय तो वहाँ की समृद्धि कई गुना बढ़ सकती है। परन्तु वे कभी इस भाग को विकसित करने की चेष्टा करेंगे ? वे तो इसे अपनी जागीर समझते हैं और जागीरदारी खाते हैं।

"परन्तु", उसने अन्त में कहा, "अब हालत बदल रही है। लोग उतने बेवकूफ नहीं रहे। वे इन्हें समझने लगे हैं। अगर यहाँ रेफरेंडम हो, तो अधिकांश लोग भारत के पक्ष में ही वोट देंगे।"

मुझे उस समय मिस्टर फ़र्मेन्डिज की बात याद आई जब उन्होंने कहा था—'बट आई' ल वोट फौर इण्डिया, आल द सेम।

शिवाफोर्ट से उतर कर हम सड़क के दूसरे किनारे हो गये। वहाँ से दूर दूर तक समुद्र में बिखरी हुई सैकड़ों छोटी बड़ी किश्तियाँ और जहाज देखे जा सकते थे। रेल की पटरी उस भाग में समुद्र के साथ साथ बिछी हुई थी और उस पर एक गाड़ी मार्मुगांव से वास्को की दिशा में जा रही थी। मैं आते हुए वास्को ही उतर गया था, मार्मुगांव

तक गाड़ी में नहीं आया था, अतः गाड़ी का इस तरह समुद्र के पास से गुजरना सड़क से देखते हुए मुझे बड़ा अच्छा लगा।

हार्बर से कारवाड़कर लौट गया और मैं पंजिम जाने वाली फ़ेरी में बैठकर पंजिम चला गया।

पंजिम मुझे बहुत साधारण शहर लगा। कुछ आधुनिक बिल्डिंगें होटल और भीड़—वही कुछ, जो एक औसत दर्जे की राजधानी में पाया जाता है। हाँ एक आमलेट की कीमत सवा रुपया मैंने पहली बार वहीं पर अदा की। हो सकता है उस कीमत का कारण ३१ दिसम्बर की शाम रही हो या मेरे चेहरे की थकान, जिससे प्रकट था कि मैं बाहर से आया हुआ यात्री हूँ।

रात को वहाँ गुजरात लॉज में ठहरा। वहाँ एक ही बड़े से कमरे में सात आठ पलंग थे, जिनमें से एक मुझे दे दिया गया। उस पलंग में स्प्रिंग लगे थे, इसलिये जब भी मैं करवट बदलता वह इस बुरी तरह से चिरमिराता कि मेरी नींद टूट जाती। नींद टूटने पर हर बार मुझे एक ही व्यक्ति की मोटी सी आवाज़ सुनाई देती जो दो श्रोताओं को गुजरात लाज में घटित होने वाली कहानियाँ सुना रहा था। एक बार मेरी नींद टूटी तो वह कह रहा था, "वह जापानी अपने साथ छिपाकर पन्द्रह बोतलें शराब की ले आया था। उसे पता नहीं था कि गोआ में शराब सस्ती मिलती है। उसने सोचा था कि जापानी शराब वहाँ लाकर बेच लेगा। पर यहाँ जब देखा कि शराब पानी के मोल है तो बैठकर अपनी सारी शराब आप पीने लगा। हमने उससे कहा कि भले मानस, इतनी शराब अकेला कैसे पी जायगा। कम कीमत मिलती है तो कम कीमत पर बेच दे। कुछ नुकसान ही सही। पर वह नहीं माना। दिन भर बैठा अपनी शराब पिया करता था।"

यहाँ पर मुझे ऊँघ आ गई। फिर नींद टूटी तो वह किसी और का किस्सा सुना रहा था। "कप्तान ने उसे जहाज पर ले जाने से इन्कार कर दिया। अब हमारी समझ में नहीं आया कि उसका क्या करें। गोआ की ऐश उसने ली थी, और मुसीबत हम लोगों को ही रही थी। आखिर उसे हस्पताल में ले गये। हस्पताल में जाकर वह उसी रात को मर गया।"

"उसके घरबार का कोई पता नहीं था?" एक श्रोता ने पूछा।

"बोरकर नाम था और बम्बई से आया था। अपना पूरा पता उसने दिया नहीं था। वहाँ पर तो शरीफ बन कर रहता होगा न। यहां आया था कि दो चीजों के लिए गोआ की मशहूरी है। एक शराब और दूसरी रण्डी। यार लोग यह तो सोचते नहीं कि यहाँ की ये दोनों चीज़ें अपना असर क्या दिखाती हैं। अब एक किस्सा और सुन लीजिये......"

यहाँ पर मुझे फिर से नींद आ गयी।

सौ साल का गुलाम

सवेरे उठकर मैं पंजिम से ओल्ड गोआ चला गया। ओल्ड गोआ में कई बड़े बड़े गिरजाघर हैं, जिनमें से एक मे (शायद उसका नाम चर्च आव बाय जीज़स है) सेंट फ्रांसिस के शरीर का प्रदर्शन हो रहा था। कहते हैं वह शरीर चार सौ साल से सुरक्षित है और अभी तक उसमें विकार नहीं आया। गिरजाघर के बाहर दर्शनार्थियों के दो क्यू बन रहे थे, जिनमें से प्रत्येक में उस समय कम से कम एक एक हज़ार

व्यक्ति खड़े होंगे। चिलचिलाती धूप में चार चार छः छः घण्टे खड़ा रह कर एक व्यक्ति उस शरीर तक पहुँच पाता था। मैंने सुना कि सेंट फ्रांसिस के पैर का एक अँगूठा चादर से बाहर निकला रहता है, जिसे हर दर्शनार्थी झुक कर चूमता है और आगे बढ़ जाता है।

वहाँ का वातावरण भारत के हिन्दू मेलों जैसा ही था। उसी तरह वहाँ मूर्तियाँ, मालायें और धार्मिक पुस्तकें बिक रही थीं। उन दिनों के लिए गिरजे के पास अस्थायी बाज़ार बन गये थे, जिनमें प्रायः सभी दुकानें चटाइयों की बनी थीं। इन बाज़ारों के एक सिरे पर बड़े बड़े मटकों में ताड़ी बिक रही थी। कीड़ों से भरा वह सफ़ेद पेय वहाँ काफी लोकप्रिय जान पड़ता था।

एक चटाइयों से बने रेस्तराँ में खाना खाकर मैं घूमने निकला। एक गिरजाघर की ड्योढ़ी और बाहर के बरामदे में मैंने ज़मीन पर पड़ी हुई कुछ पत्थर की मूर्तियाँ देखीं। वे हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियां थीं जो अपनी अवस्था और शिल्प से चार पांच सौ साल पुरानी लगती थीं।

धूप बहुत थी अतः मैं नारियलों के एक घने झुन्ड की ओर चल पड़ा। उस झुन्ड में पहुँचकर मैंने अपने को एक विस्तृत धान के खेत के सिरे पर पाया। पश्चिमी समुद्रतट पर जगह जगह धान के खेत हैं जो चारों ओर से नारियल के पेड़ों से घिरे हुए हरियाली की छोटी छोटी झीलों जैसे लगते हैं। मैं कुछ देर नारियलों के झुन्ड में खड़ा लहलहाते धान को देखता रहा। फिर मुझे प्यास महसूस हुई और मैंने चारों ओर देखा कि वहाँ कहीं पानी मिल सकता है या नहीं। तभी एक किसान पीछे से मेरे पास आ गया और उसने पहले कोंकणी में और फिर टूटी फूटी अंग्रेज़ी में पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ।

"यहाँ कहीं पानी मिल सकता है? "मैंने पूछा।

"मिलेगा। मेरे पीछे पीछे आ जाओ," उसने कहा और एक कोठरी की दिशा में चल पड़ा। रास्ते में दो तीन जगह छोटे छोटे नालों पर नारियल के तने रखकर बनाये गये पुल पड़ते थे। वह तो उन्हें बड़ी आसानी से पार कर लेता था पर मुझे उन पर से बहुत सँभल सँभल कर बाहें हिलाकर अपना संतुलन बनाये रखते हुए चलना पड़ता था। अन्तिम पुल उसकी कोठरी से थोड़ा ही पहले था। उसे मैं पार कर ही रहा था, जब सामने से एक कुत्ता जोर जोर से भौंकता हुआ मेरी ओर लपका। कुत्ते के इस तरह लपकने से मेरा बिगड़ा हुआ संतुलन ठीक हो गया और मैं झपट कर दूसरी ओर पहुँच गया।

उसकी कोठरी के बाहर एक बाड़ा बना हुआ था जिसमें आठ दस मुर्गियाँ उस समय दोपहर का विश्राम कर रही थीं। बाड़े के पास पहुंच कर किसान ने मुझे ज़रा रुकने के लिए कहा और आप भागता हुआ कोठरी के पीछे की ओर चला गया। तीन चार मिनिट बाद वह हाथ में एक चाबी लिए हुए आया और मुझे साथ आने को कहकर कोठरी के दरवाजे की ओर बढ़ा।

मैंने देखा कि कोठरी के बाहर का आँगन बहुत अच्छी तरह से लिपा हुआ है। कोठरी के अन्दर जाकर भी देखा कि वह एक साफ़ सुथरी जगह है जिसमें पार्टीशन डालकर दो तीन छोटे छोटे कमरे बना लिये गये हैं। एक कमरे में एक पलंग था जिसका बिछावन काफी उजला था। दूसरे कमरे में खाना बनाने के बरतन आदि बड़े ढंग से रखे हुए थे। तीसरे में एक नीची गोल मेज और दो तीन आराम कुर्सियाँ पड़ी थीं। उसी कमरे में एक सुराही में पानी रखा था और वह किसान उसमें से शीशे के गिलास में पानी डालने से पूर्व गिलास को मलकर साफ करने लगा था। मैंने मन ही मन उसकी सुरुचि की प्रशंसा की और साथ ही यह भी सोचा कि कम से कम गोआ के किसान का

जीवन स्तर भारतीय किसान जितना हीन तो नहीं। उसने मुझे पानी का गिलास दे दिया। मैंने उसका नाम पूछा।

"फ्रेड" उसने नम्रता और संकोच के साथ कहा।

"यहाँ के सभी किसान इसी तरह रहते हैं फ्रेड जैसे तुम रहते हो?" मैंने पूछा।

उसके चेहरे पर ऐसा भाव आया जैसे मेरे प्रश्न का अर्थ उसकी समझ में न आया हो।

मैंने बात समझाते हुए कहा, "देखो न, तुम्हारा घर इतना साफ सुथरा है, तुम्हारा रहन सहन इतना अच्छा है, तुमने अपनी मुर्गियाँ पाल रखी हैं, अपना कुत्ता रख रखा है। क्या और किसान भी इसी तरह रहते हैं या कुछ थोड़े से ही किसान तुम्हारे जैसा जीवन व्यतीत करते हैं? मेरा मतलब है, तुम्हारी जमीन की पैदावार साधारण किसानों से ज्यादा है इसलिए तुम इतनी अच्छी तरह रहते हो या यहाँ का मामूली किसान भी इसी तरह रहता है?"

मेरी इतनी लम्बी चौड़ी बात का उसने उत्तर दिया, "जी यह कोठरी मेरी नहीं है।"

खाली गिलास उसे देकर मैं कोठरी के बाहर आ गया। मैंने एक दृष्टि आस पास के धान के खेतों पर डाली और पूछा, "यह खेत भी तुम्हारे नहीं हैं?"

वह गिलास रखकर अब कोठरी का दरवाजा बन्द कर रहा था। बोला, "नहीं। ये खेत उधर वाले गिरजे के बड़े पादरी के हैं। यह घर भी उन्हीं का है। मैं इनके खेतों में काम करता हूँ। मेरा घर उस तरफ है।" और उसने उस ओर संकेत किया, जिधर वह चाबी लेने गया था।

"ये मुर्गियाँ ?" मैंने बाड़े की ओर संकेत करके पूछा।

"ये भी पादरी की हैं। कुत्ता भी पादरी का है। उधर उसकी डेरी भी है।"

"पादरी इसी घर में रहता है ?"

"नहीं" वह बोला, "यहाँ वह कभी कभी आराम करने के लिए आ जाता है। वैसे उसका घर गिरजे के साथ ही है।" फिर कुछ रुक कर वह बोला, "मगर पादरी आज कल यहाँ नहीं है।"

"कहीं बाहर गया है ?"

"हाँ अपने देश गया है।"

"उसका देश कौन सा है ?"

"पुर्तगाल !"

"तुम उसके पास कितने दिनों से हो ?" मैंने चलते चलते पूछा।

"हमारा खानदान सौ साल से उसकी सेवा में है," उसने गर्व के साथ कहा, "सौ साल से इन खेतों की जुताई कटाई हमी लोग करते आये हैं।"

और वह उसी गर्व के साथ मुस्कराया। मुस्कराने पर उसकी गालों की लकीरें जो पहले उतनी स्पष्ट नहीं थीं, अब स्पष्ट दिखाई दीं।

दूर खेतों में से किसी ने उसे आवाज दी। फ्रेड मुझसे विदा लेकर अपने काम से उस तरफ चला गया। मैं पुनः नारियल के तनों पर से होता हुआ वापस लौटा।

मूर्तियों का व्यापारी

कोई नगर कितना ही आबाद क्यों न हो, उसमें कुछ रास्ते ऐसे अवश्य होते हैं, जिन्हें उजाड़ रास्ते कहा जा सकता है। कभी कभी तो इधर उधर की दो सड़कें खूब चलती होती हैं और बीच में एक सड़क अभिशप्त सी वीरान पड़ी रहती है। मड़गाँव में ऐसी ही एक सड़क पर मैं कुछ देर चार पाँच अधनंगे बच्चों को सिगरेट की खाली डिबियों से खेलते देखता रहा।

उन्होंने एक सीमा बना रखी थी, जिसके उस ओर हर एक बारी बारी से अपनी डिबिया फेंकता था। जब तक कोई डिबिया पहले उधर पड़ी हुई किसी डिबिया से न टकराये, तब तक डिबिया फेंकते जाना होता था। जिसकी डिबिया टकरा जाती, वह तब तक फेंकी गई सारी डिबियों का स्वामी हो जाता था।

वे मस्त होकर खेल रहे थे। सिगरेट की डिबियां उनके लिए खेल के अमूल्य साधनों से कम महत्त्व नहीं रखती थीं। दस डिबियां जीत लेना उन्हें उतना ही उत्साहित करता था, जितना एक अच्छा सा पुरस्कार पा लेना।

मड़गांव से मुझे वास्को की गाड़ी पकड़नी थी। गाड़ी शाम को साढ़े पांच बजे आती थी और अभी तीन ही बजे थे। मैं इस निश्चय पर पहुँच चुका था कि मैं गोआ में नहीं रहूंगा। एक स्थानीय प्रोफेसर ने बतलाया था कि पुलिस यह जानकर कि मैं एक भारतीय हूं और वहां रह कर हिन्दी में कुछ लिखा करता हूँ यह असम्भव नहीं कि मुझे और मेरे कागजों को तब तक के लिए अपने अधिकार में ले ले, जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि मैं गोआ सरकार के विरुद्ध

कुछ नहीं लिख रहा। फिर वहाँ का समुद्रतट भी ऐसा नहीं था कि उसी का कुछ आकर्षण होता। अगले रोज, साबरमती जहाज बम्बई से मामु गाँव पहुंचने वाला था और मैं उसमें मंगलौर जा सकता था। मंगलौर से कनानोर, जिसके विषय में मुझे शिमले में बतलाया गया था, बहुत पास है। अतः मैंने चल देने का निश्चय कर लिया था।

दोपहर को गाड़ी का समय पूछने मड्गाँव स्टेशन पर गया था। उस समय वहाँ एक व्यक्ति ने मेरे पास आकर पूछा था कि क्या मैं सवा रुपये में सेंट फ्राँसिस की एक मूर्ति ख़रीदना चाहूंगा। उसके पास सौ डेढ़ सौ प्लास्टिक की बनी हुई छोटी छोटी मूर्तियां थीं जो प्लास्टिक के ही पारदर्शी बल्बों में बन्द थीं। मेरे मना कर देने पर उसके चेहरे पर जो निराशा का भाव दिखाई दिया, उससे मेरे मन में आया कि उससे एक मूर्ति ख़रीद लूं। परन्तु यह सोचकर कि हजारों ईसाई यात्री आये हुए हैं, कोई न कोई तो उससे ख़रीद ही लेगा, मैं स्टेशन से बाहर चला आया।

शाम को घूम घामकर जब मैं वापस स्टेशन पर पहुँचा, वह फिर मेरे पास आया और बोला कि यदि मैं बारह आने में या आठ ही आने में वह मूर्ति उससे लेना चाहूं, तो वह देने को तैयार है। मैंने सोचा कि वह भी असंख्य रास्ते के सामान बेचने वालों में से है, जो इसी तरह सामान की कीमतें बढ़ा घटाकर बेचा करते हैं। मैंने फिर मना कर दिया। उसने जैसे अनुनयात्मक ढंग से कहा, "देखिये एक मूर्ति ले लीजिये, चाहे मुझे चार ही आने दे दीजिये। विश्वास रखिये मूर्ति का मूल्य सवा रुपया है। मैं दूसरी कोई मूर्ति सवा रुपये से कम में नहीं बेचूंगा।"

मैं स्टेशन की बेंचपर बैठ गया था और वह मेरे निकट आकर खड़ा था।

"परन्तु तुम यह मूर्ति क्यों इतनी सस्ती बेचना चाहते हो ?"

वह एक क्षण रुका, फिर संकोच हटाकर बोला, "देखिये बात यह है कि मैं आज सवेरे से एक भी मूर्ति नहीं बेच पाया। मेरे पास एक पैसा नहीं है, और मैं सवेरे से भूखा हूँ। आज नये साल का दिन है। मैं ईसाई हूँ। आज चाहिए तो यह था कि मैं नये कपड़े पहन कर घर से निकलता और दिन भर मौज उड़ाता, पर मेरा ट्रंक वगैरह फ़ादर डिसूज़ा के कमरे में हैं, और फ़ादर डिसूज़ा कमरे की चाबी अपने साथ ले गये हैं। मैं न कपड़े बदल सका हूँ और न खाना खा सका हूँ। मैंने सोचा था कि दो एक मूर्ति बिक जायेंगी तो कम से कम कुछ खा पी तो लूंगा ही, पर नये साल का दिन है क्या कहूँ। मेरे लिए यह दिन ऐसा मनहूस चढ़ा है कि एक प्याला चाय भी नहीं पी सका। रोज़ सौ पचास मूर्तियां बेच लेता था, पर आज सवेरे से एक भी नहीं बिकी। इस समय मेरा भूख के मारे इतना बुरा हाल है कि क्या कहूं।

वह चौबीस पच्चीस वर्ष का युवक था। बात करते-करते उसकी आँखें झुकी जा रही थीं। उसके चेहरे के भाव से लगता था कि वह सच कह रहा है। मैंने उससे पूछा "ये फ़ादर डिसूज़ा कौन हैं ?"

"हमारे पार्सन हैं" उसने कहा, "मैं उनके साथ ही बम्बई से आया हूं।'

"ये मूर्तियाँ बम्बई से ही लाये हो ?" मैंने पूछा।

"नहीं, ये मूर्तियाँ फ़ादर डिसूज़ा रोम से लाये थे।"

"तो ये तुम फ़ादर डिसूज़ा की तरफ़ से बेच रहे हो ?"

"हां। फ़ादर डिसूज़ा मुझे पाँच प्रतिशत कमीशन देते हैं। हमने दस दिन में बारह तेरह सौ मूर्तियाँ बेच ली हैं, पर आज का ही

दिन न जाने क्यों इतना मनहूस चढ़ा है? आज पहली जनवरी है। और मैं डर रहा हूं कि कहीं मेरा सारा साल ही तो बुरा नहीं बीतेगा !

"फ़ादर डिसूजा कहाँ चले गये ? " मैंने पूछा।

"आधीरात को उनका ··· के बड़े गिरजे में सर्मन था। बारह बजे नया साल आरम्भ होते ही वहाँ प्रार्थनायें होनी थीं, जिनके बाद उन्हें सर्मन देना था। उन्हें इसी के लिए विशेष रूप से यहाँ बुलाया गया है। एक साल पहले ही इन लोगों ने उनसे वचन ले लिया था।"

"फ़ादर डिसूज़ा रोम कब गये थे ?" मैंने पूछा।

'चार महीने हुए गये थे। अभी महीना भर पहले वहाँ से आये हैं।"

एक क्षण रुककर वह फिर बोला, "जाते हुए वे चाबी शायद इस लिए साथ ले गये होंगे कि तीन चार हज़ार की मूर्तियाँ अभी कमरे के अन्दर रखी हैं। मुझे उस समय उन्होंने यहीं के एक गिरजे में मूर्तियाँ बेचने के लिए भेज रखा था। मेरे लौट कर आने से पहले ही वे चले गये। अब कल सवेरे तक लौट कर आयेंगे।"

फिर उसने कहा "आप मूर्ति ले लें, मैं चार आने में दे रहा हूं।

"आओ हम लोग चाय पियें" मैंने उससे कहा,

"मूर्ति मुझे नहीं चाहिए।"

चाय स्टाल पर उसने संकोच के कारण अधिक कुछ नहीं खाया हालांकि मैं देख रहा था कि उसे बहुत भूख लगी है।

"कितने अकड़ कर चलते हैं ये।"

उसने चाय पिते हुए वहाँ के एक सिपाही को देख कर कहा, "वैसे कोई इनके सामने मर भी जाय तो ये उसे उठायेंगे नहीं, सडक पर पड़ा ही रहने देंगे। यह मैंने यहाँ दस दिन रहकर देखा है। भडगांव की सड़क पर एक कुत्ता तीन दिन उसी तरह पड़ा रहा। ये लोग शायद इस आशा में थे कि उसके सम्बन्धी उसे उठाकर दफना आयेंगे।"

चाय पीकर उसने अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में धन्यवाद दिया और जाने से पहले कहा, "मैं जानता हूं मुझे किस पाप के दण्डस्वरुप आज भूखा रहना पड़ा है। मैं आज नये साल के दिन सवेरे गिरजे नहीं गया, उसीका यह दण्ड है। मै अपने मैले कपड़ों की वजह से झिझकता रहा। भला ईश्वर के घर में मैले कपडों में जाने में क्या संकोच! मुझे कोई रोकता थोड़े ही? इतना ही था कि लोग देखते और समझते कि···" और उस वाक्य को बीच में ही छोड़कर वह बोला, खैर मुझे पता तो है ही कि मुझे यह किस चीज का दण्ड मिला है। यह वजह है कि आज मेरी मूर्तियां नहीं बिकीं।"

परन्तु मै उस समय उस मूर्त्तियों के व्यापारी के विषय में सोच रहा था, जो रात को सर्मन देने गया था, और चाबी अपने साथ लेता गया था।

आगे के घर

जिस समय मैं वास्को पहुँचा, रात हो रही थी। कारबाड़कर मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने आज के दिन सोलह मील दूर कहीं कोई मन्दिर देखने चलने का प्रोग्राम बना रखा था। मैंने उसे बतलाया कि

मैंने सवेरे साबरमती से मैंगलौर चले जाने का निश्चय किया है। उसने पिकनिक के लिए सामान वगैरह तैयार कर रखा था, पर मुझ से उसने उसके विषय में कुछ नहीं कहा। सवेरे नाश्ते के समय मुझे मालूम हुआ कि जो कुछ मैं खा रहा हूं, वह उस दिन की पिकनिक के लिये तैयार किया गया था। परन्तु तब तक कारवाड़कर स्वयं ही जाकर मासुगांव से मेरे लिए साबरमती का टिकट ले आया था।

रात को मैं कारवाड़कर के साथ फिर घूमने निकल गया था। चाँदनी रात में वास्को की मेन सड़क जिसके बीचों-बीच थोड़े-थोड़े अन्तर पर सुन्दर-सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं, बहुत अच्छी लग रही थी। हमारी दाईं ओर—नये साल के कारण जगमगाती हुई कोठियों में नये साल के नाच और गीत चल रहे थे और बाईं ओर समुद्र की लहरों की हल्की हल्की आवाज़ सुनाई दे रही थी। चलते हुए मैंने कारवाड़कर से कहा कि मुझे वास्को के घर बहुत पसन्द हैं—एक तो उनके निर्माण में सुरुचि का परिचय मिलता है, दूसरे उनकी स्थिति भी बहुत सुन्दर है।

"वास्को के और भी देखने लायक़ घर हैं, इसी सड़क पर थोडा और आगे!" कारवाड़कर ने कहा।

मैं दिन भर घूमकर थका हुआ था और लौट चलने का प्रस्ताव करने वाला था, पर उसकी बात सुनकर मैं उसके साथ चलता रहा।

सड़क का वह भाग जहाँ बीच में वृक्ष लगे हुए थे समाप्त हो गया और खुली सड़क आ गई। दाईं ओर कोठियाँ अब भी थीं पर वे एक दूसरी से काफी हट कर बनी हुई थीं। मील भर और चलकर कारवाड़कर बाईं ओर को मुड़ा और एक कच्चे रास्ते पर चलने

लगा। रास्ता अंधेरा और ऊंचा नीचा था, अतः एक जगह मैं ठोकर खा गया।

"इधर कौन से घर हैं?" मैंने ठोकर खाये हुए पैर को दूसरे पैर से दबाते हुए उससे पूछा।

"जो घर मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूं" कारवाड्कर बोला, "अब तो हमें सौ-पचास गज ही जाना है।"

मैं कारवाड्कर का मतलब समझ रहा था। वह मुझे वास्को की एक गरीब बस्ती दिखाने ले आया था।

वह रास्ता कभी दायें और कभी बायें मुड़ता हुआ कुछ झोंपड़ियों के सामने आ निकला। प्रायः सभी झोंपड़ियाँ चटाई की बनी हुई थीं। मैंने पंजाब के गाँवों में कच्ची मिट्टी के बने हुए खस्ता हाल घर देखे हैं। बम्बई में खार स्टेशन के एक ओर फूस की जीर्णातिजीर्ण झोंपड़ियों के पास से भी अनेक बार गुज़रा हूं। परन्तु वे चटाई की झोंपड़ियाँ मनुष्य के निवास-स्थान का हीनतम उदाहरण थीं। चटाई की दीवारों का भी बीस साल पुराना, मैला, छुटा हुआ एक रूप हो सकता है, यह उन घरों को देखकर मैं जान सका। एक झोंपड़ी के आगे दो मोमबतियाँ जल रही थीं। उसकी ओर संकेत करके कारवाड्कर ने कहा, "वह एक ईसाई का घर है जो इस तरह अपना नया साल मना रहा है।"

"यहाँ वही एक ईसाई का घर?" मैंने पूछा।

"नहीं।" कारवाड्कर बोला, "यह मिली-जुली बस्ती है। अधिकतर घर यहां धोबियों के हैं, जिनमें आधे से अधिक ईसाई हैं। परन्तु यह ईसाई शायद औरों की अपेक्षा अधिक मालदार हैं।...... मगर देखना, ज़रा बचकर आना......" उसने सहसा मुझे चेतावनी

दी। मैं समय पर सम्भलकर उस गन्दे पानी के ऊपर से उछल गया जो शायद उन झोंपड़ियों की सीमाओं का निर्धारण कर रहा था।

एक झोंपड़ी के बाहर खड़े होकर कारवाड़कर ने किसी व्यक्ति को आवाज दी। थोड़ी देर में वह हाथ में दिया लिए हुए अन्दर से निकला। कारवाड़कर ने उससे कोंकणी में कुछ बातें कीं। फिर हम वापस चल पड़े। चलते हुए कारवाड़कर ने मुझे बतलाया कि उसने उस व्यक्ति से बातों ही बातों में पूछा था कि वह आज नया साल क्यों नहीं मना रहा। उस व्यक्ति ने उसे उत्तर दिया कि उसने आज दिनभर सोकर अपना नया साल मनाया है।

वहाँ से निकलकर हम फिर सड़क पर आ गये। बाईं ओर कोठियों में उसी तरह नाच और गीत चल रहे थे।

वास्को की सड़क का सुन्दर भाग निकट आ रहा था—यह भाग जो टूरिस्टकी दुनिया है। आगे के घर टूरिस्ट की दुनिया में नहीं, क्योंकि गाइड में इनका कहीं निर्देश नहीं है।

बदलते रङ्गों में

कारवाड़कर सवेरे मुझे साबरमती में चढ़ा गया। लगभग डेढ़-दो बजे जहाज़ का लंगर उठा और जहाज़ धीरे-धीरे खुले समुद्र की ओर बढ़ने लगा। मैं उस समय जहाज़ के एक पार्श्व में एक तख़्ते पर बैठा,बोर्ड पर बाहें टिकाये पानी की ओर झाँक रहा था। पानी पर एक कार्ड तैर रहा था, जिसपर एक केंकड़ा बैठा था। लहरें कार्ड को जहाज़ की ओर धकेल रही थीं, परन्तु वह केंकड़ा निश्चिंत भाव से बैठा

शायद अपनी नौका के जहाज़ से टकराने की राह देख रहा था। जब कार्ड जहाज़ के पास आ गया तो जहाज़ के नीचे से उठते हुए पानी ने उसे फिर परे धकेल दिया। केंकड़े ने दो टांगें थोड़ी उठाकर फिर कार्ड पर जमा लीं और उसी निश्चिंत मुद्रा में बैठा गति का आनन्द लेता रहा।

जब तक जहाज़ हार्बर में था, समुद्र का पानी हरी आभा लिए हुए था। ज्यों-ज्यों जहाज़ खुले पानी में पहुँचने लगा, पानी का रंग नीला दिखाई देने लगा। पीछे हार्बर में जापानी जहाज़ 'चुओ मारो' की चिमनियाँ अब भी दिखाई दे रही थीं। हमारे एक ओर खुला अरब सागर था और दूसरी ओर भारत का पश्चिमी तट। तट से कुछ इधर पानी में दो छोटे-छोटे द्वीप दिखाई दे रहे थे, जो दूर से देखने में बहुत कुछ जापानी घरों जैसे लगते थे। इतने अन्तर से देखते हुए पश्चिमी तट की रेखाएं एक बड़े से नक़्शे की रेखा लग रही थी। उन रेखाओं के साथ-साथ यात्रा करना क्रियात्मक रूप से भूगोल का एक पाठ पढ़ने की तरह था। उन छोटे-छोटे द्वीपों पर से सफेद समुद्र कपोत उड़कर जहाज़ की ओर आ रहे थे। उनमें से कुछ रास्ते में ही पानी की सतह पर उतर जाते और नन्हें नन्हे सफेद पोतों की तरह पानी की सतह पर तैरने लगते। दूसरी ओर खुले पानी की नीलिमा में सहसा गहरी हरियाली घुल गई। मैं उस रंग के फैलने और धीरे धीरे फिर नीलिमा में घुल जाने को देखता रहा। मेरा ध्यान इस ओर नहीं गया कि नीले पानी में सहसा यह हरियाली कहां से आ गई। मेरे साथ ही तख्ते पर एक नवयुवक बैठा था। वह मुझे सम्बोधित करके बोला, "आप इस हरियाली के विषय में सोच रहे हैं?"

"मैं इसे देख रहा हूं," मैंने कहा।

"ये प्लैंटोन्ज है, तैरते हुए जीव," वह बोला, "इनमें पौधे और मांसयुक्त प्राणी, दोनों ही तरह के जीव—शरीर मिले हुए हैं।"

वह नवयुवक प्राणिविज्ञान का विद्यार्थी था। विद्यार्थियों की एक पार्टी खोज के सिलसिले में गोआ आई थी और वह भी उसी पार्टी का सदस्य था। वह पानी में तैरती हुई एक काले रंग की रस्सी जैसी चीज की ओर संकेत करके बोला, "वह चीज देख रहे हैं ?"

मैं पहले उसके संकेत का अनुसरण नहीं कर सका। फिर ध्यान से देखने पर मैं पानी की सतह से थोड़ा नीचे उस पदार्थ की स्थिति का निश्चय कर पाया।

"जानते हैं वह क्या है ?"

"कोई पुरानी रस्सी है," मैंने कहा।

वह मुस्कराया। बोला, "वह रस्सी नहीं है, वह भी एक जीव-समूह है।"

"जीव, या जीव समूह ?"

"जीव समूह," वह बोला, "इन्हें एसीडियन जर्म परिवार कहते हैं। ये एक तरह की मछलियां होती हैं, जो आपस में जुड़ी रहती हैं। ये रबड़ की तरह फैल सकती हैं और कट कट कर अलग होती हैं। पुनः ये उसी तरह बड़ी होने लगती हैं।"

"तो ये हमारे देश के पूंजीपतियों की तरह हैं" मैंने मुस्करा कर कहा। वह अपनी बात कहता रहा, "रात को चाँद निकलने से पहले समुद्र में कुछ चमकीले जीव दिखाई देते हैं, जो फास्फोरस से चमकते हैं। मैं शामको आपको वे जीव दिखाऊँगा।"

वह मुझे देर तक पानी के जीवों के विषय में और भी बहुत कुछ बताता रहा। फिर मेरा ध्यान डेक की हलचल की ओर आकृष्ट हो गया, क्यों कि वहाँ एक नवयुवक और एक नवयुवती में माउथ आर्गन (मुँह का बाजा) बजाने की प्रतियोगिता छिड़ गई थी।

साबरमती का वह थर्ड क्लास का डेक किसी तबेले से कम नहीं था। सारे डेक पर एक अन्त से दूसरे अन्त तक चारों ओर बिस्तर ही बिस्तर बिछे थे जो बिना किसी सीमा रेखा के एक दूसरे से सटे हुए थे। कहीं कहीं दस व्यक्तियों के परिवार को चार बिस्तर बिछाने की जगह मिली थी, और वे रात को उन्हीं में समा कर सोने जा रहे थे। जिस भाग में मुझे बिस्तर लगाने की जगह मिली थी वहाँ और भी असुविधा थी क्यों कि जहाज़ का माल उसी भाग से चढ़ाया और उतारा जाता था। मेरे बिस्तर के एक ओर एक लम्बे तगड़े पादरी साहब का बिस्तर था और दूसरी ओर पाँच नमाज पढ़ने वाले एक मुसलमान सौदागर का। इस तरह मैं दो धर्मों के बीच में फंसा हुआ था। अधिकांश लोग इस समय भी अपने अपने बिस्तरों पर ही बैठे थे। हम थोड़े से लोग पार्श्व के तख्ते पर बैठे दोनों ओर की दुनिया को देख रहे थे।

माउथ आर्गन बजाने की प्रतियोगिता किस तरह आरंभ हुई, इसका मुझे ठीक पता नहीं। नवयुवक एक ओर के शय्या-समुदाय में था और नवयुवती दूसरी ओर के। शायद ऐसा हुआ कि नवयुवती ने माउथ आर्गन पर कोई फिल्मी धुन बजाई। उसके समाप्त करते ही यह नवयुवक इधर अपने माउथ आर्गन पर वही धुन बजाने लगा। उसके समाप्त करने पर इधर से उसे बहुत जोर से दाद दी गई। इस पर नवयुती उधर दूसरी धुन बजाने लगी। उसे इस बार उधर से दाद मिली जो और भी जोरदार थी। इससे यह प्रतियोगिता छिड़ गई जो माउथ आर्गन की प्रतियोगिता कम थी और दाद देने की अधिक। जहाज के दूसरे भागों से भी लोग वहाँ आकर इकट्ठे हो गये थे। नव-युवक का पक्ष बलवान होता जा रहा था। अन्त में जब उसे एक धुन बजाने पर बहुत जोर शोर से दाद दी गई, तो उसने खड़े होकर

युवती को लज्जित करके अपने हैट को छुआ। इस बार उसे और भी जोर के साथ दाद दी गई। नवयुवती ने फिर और धुन नहीं बजाई।

जहाज कुछ देर के लिए कारवाड़ रुककर जिस समय आगे बढ़ा सन्ध्या हो चुकी थी समुद्र के पानी का रंग उस समय सुरमई दिखाई दे रहा था। दूर एक लाइट हाउस की बत्ती दो बार जल्दी जल्दी चमकती, फिर ओझल हो जाती, फिर दो बार चमकती और ओझल हो जाती। अंधेरा उतर रहा था। लाइट हाउस से पीछे दिशा का रंग हल्का रुपहला-सा सुरमई हो गया था। उस आकाश की पृष्ठभूमि के आगे उठी हुई उस बत्ती का चमकना और ओझल हो जाना ऐसा लग रहा था जैसे कौंधती हुई बिजली को एक मीनार में बन्द कर दिया गया हो और वह उस मीनार में छटपटा रही हो कुछ उसी तरह जैसे मलमल के आँचल में पकड़े हुए जुगनू छटपटाते हैं। जिस द्वीप में वह लाइट हाउस बना हुआ था, वह और उसके आस-पास के द्वीप अब गहरे काले पड़ते जा रहे थे जैसे जल प्लावन के कारण डूबे हुए बड़े बड़े दुर्ग या जल के अन्दर से उभरे हुए जलचरों का देश।

पूर्वी आकाश में रात हो गई थी, और उधर गहरी कालिमा में तारे झिलमिलाने लगे थे, परन्तु पश्चिम की ओर अरब सागर के क्षितिज में अभी सन्ध्या की हल्की हल्की आभा थी। परन्तु वे बादल जो कुछ देर पहले लाल थे और जिनके कारण सूर्यास्त सुन्दर लग रहा था, अब कालिमा में घुलते जा रहे थे। समय सन्ध्या के सौन्दर्य से आगे बढ़ आया था। वह अब नई सन्ध्या के नये सौन्दर्य की ओर बढ़ रहा था। आने वाले कल की सन्ध्या के सौन्दर्य की ओर। अतीत, भले ही वह कितना सुन्दर रहा हो, समय उसकी ओर मुड़ नहीं जाता। वह नये नये सौन्दर्य की सृष्टि करता हुआ निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। (यहाँ मुझे कुछ लोगों के सांस्कृतिक और

राजनैतिक भाव याद आते हैं, जिनमें वे बीते हुए कल को फिर से लाने की चर्चा किया करते हैं। उन लोगों का न अपने में विश्वास होता है न समय की शक्ति में और वे अनागत को आशंका की दृष्टि से देखते हुए, गत के स्मृतिशेष रूप को ही आदर्श मान कर उससे चिपक रहना चाहते हैं।)

जहाज़ बहुत डोलने लगा था। डेकपर एक जगह से दूसरी जगह चल कर जाने वाले व्यक्ति को कई तरह की नृत्य की मुद्राएं बनाते हुए चलना पड़ता था। बहुत से लोग गोआ से अपने साथ छिपाकर शराबकी बोतलें ले आये थे और अब उन्हें पी डालने की चेष्टा में थे क्योंकि भारतीय कस्टम्ज़ से शराब छिपा कर ले जाना उतना आसान नहीं था। दो व्यक्ति जो पीकर गुट हो चुके थे,अब एक दूसरेसे और पीने का अनुरोध कर रहे थे। दोनोंमें से प्रत्येक के दिमागमें यह बात समायी हुई थी कि उसे शराब चढ़ गई है जब कि दूसरे को अभी नहीं चढ़ी, दूसरे को और पीनी चाहिए। जिससे उसे भी थोड़ी चढ़ जाय। दोनों त र्क देकर एक दूसरे को मनाने की चेष्टा कर रहे थे। एक को अपने कान गर्म महसूस हो रहे थे और दूसरे को अपनी आँखें सुर्ख लग रही थीं। अन्त में दोनों ही तर्क में सफल हुए और और शराब उंडेल कर पीने लगे। पास पास ही एक समुदाय के स्त्री पुरुषों ने पीकर ताल देते हुए एक कन्नड़ गीत गाना आरम्भ कर दिया था। ऐसे ही तरह-तरह के गीत नाना भाषाओं में उस समय जहाज के विभिन्न भागों में गाये जा रहे थे। मैंने एक बार चेष्टा की कि कुछ देर के लिए सो जाऊं। पर उन ध्वनियों को सुनते हुए और जहाज़ के डोलने का अनुभव करते हुए नींद तो आ नहीं रही थी और लेटे रहना अच्छा नहीं लग रहा था। मैं पुनः उसी तख्ते पर जा बैठा। समुद्र में ज्वार आ रहा था। बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं जिनसे समुद्र की छाती उच्छ्वसित होती लग रही थी। तख्ते पर बैठे हुए

जहाज़ के डोलने के साथ समुद्र की सतह के निकट पहुँच जाना, फिर ऊँचे उठना, फिर नीचे जाना अच्छा लगता था। बटकल नामक स्थान में सामान उतारने के लिए जहाज़ स्थल से पाँच छः मील इधर ही रुका और कुछ पालवाले बेड़े सामान लेनेके लिए आये। उनमेंसे एक बेड़े का शायद संतुलन बराबर नहीं था, क्योंकि ऊँची उठती हुई लहर के साथ ऊपर उठकर जब वह नीचे को आता था तो हर बार यह लगता था कि वह एक ओर को उलट जायगा। उसमें सामान भरा गया, तो वह उसी तरह एक ओर को भार देकर डोलता हुआ किनारे की ओर चला। मुझे लग रहा था कि वह किसी भी क्षण समुद्र में उलट जायगा। परन्तु बेड़े के मल्लाह निश्चिन्त थे। उन्हें उसमें कोई खतरा ही नहीं लग रहा था। जब बेड़ा जहाज़ के पीछे से होकर दूसरी ओर चला गया तो मैं उधर जाकर देखने लगा। वह लहरों पर उठता गिरता, और उसी तरह एक ओर को झुककर पानी को चूमता हुआ किनारे की ओर बढ़ता चला गया।

प्राणि—विज्ञान का विद्यार्थी शाम को फॉस्फोरस से चमकने वाले जीवों को ढूंढता रहा था और जहाज़ के विभिन्न भागों में जाकर और अलग-अलग कोणों से झाँककर कहीं उन्हें देख पाने की चेष्टा करता रहा था। अब जहाज चला तो चाँद जहाज के इस ओर आ गया और पानी में सहसा चमकीले जीवों से भरी हुई एक नदी चली आई। जिस भाग में चाँद की किरणें सीधी पड़ रही थीं वहाँ असंख्य चंचल सुनहरी मछलियाँ दिख रही थीं। परन्तु वे फ्रॉस्फोरस से चमकने वाली मछलियाँ नहीं थीं। वे मछलियाँ चंचल लहरों पर चाँदनी के स्पर्शसे बन रही थी। जहाँ जहाज लहरों को काट रहा था, वहाँ फेन की एक नदी बन रही थी, जो हल्के आवर्तों का रूप लेकर पुनः विलीन हुई जा रही थीं। समुद्र में ज्वार बढ़ रहा था। पीछे की लहरें आगे की लहरों को धकेल रही थीं। तट के पास को लहरें उस समय बल और वेगसे तटके साथ टकरा रही होंगी। वे

टकराने वाली लहरें उस अगाध शक्ति का मुखर रूप थीं, स्वतः शक्ति का अगाध भाण्डार नहीं। शक्ति और समुद्र ये लहरें थीं जो पीछे थीं और गम्भीर थीं।

रात के दो बजे थे और मैं अब भी उस तख्ते पर ही बैठा था। अधिकांश लोग तब तक सो गये थे। कुछ युवक सोने वालों के निकट जा जाकर ऊधम मचाते हुए गा रहे थे "ओ, आई वुड लव टू बी ए सेलर) आई वुड लव टू बी ए सेलर..."

मैं पुनः जाकर अपने विस्तर पर लेट गया।

हुसैनी

हुसैनी एक ताश कम्पनी का एजेंट था जिससे मेरा परिचय जहाज पर हुआ।

जहाज के कैंटीन में मैं शाम को खाना खाने गया था। कैंटीन खचाखच भरा हुआ था। जिस मेज पर मैं खाना खा रहा था उसी पर तीन व्यक्ति और भी साथ खाना खा रहे थे। इनमें से जो व्यक्ति मेरे सामने बैठा था, वह तो इस सफाई से चावलों के गोले बनाकर फांक रहा था कि उसके हस्तलाघव पर आश्चर्य होता था। उसकी उंगलियां केले के पत्ते पर इस तरह घूम रही थीं जैसे वे उस भूभाग की दिग्विजय कर रही हों। दूसरे दोनों व्यक्ति जो आमने सामने बैठे थे, खाते हुए आपस में बातचीत कर रहे थे—यदि एक के बोलने और दूसरे के सुनने को बात[illegible] जा सकता है। बोलने वाला गोरे रंग और छरहरे शरीर का युवक था जिसने पतली पतली मूछें शायद इसीलिए पाल रखी थीं कि उसके चेहरे पर कुछ पुरुषत्व दिखाई दे सके। सुनने वाला छोटे कद

का और सांवले रंग का व्यक्ति था, जिसके चेहरे की हड्डियां मनुष्य के दूसरे पूर्वज से सीधी परम्परा में प्राप्त हुई थीं। उसकी आयु तीस पैंतीस के बीच की थी।

युवक अपनी पतली पतली उंगलियों से चावलों के कुछ गिने हुए दाने उठाकर मुंह में डालता हुआ दूसरे व्यक्ति को संतति निरोध के विषय में बतला रहा था, वह व्यक्ति बीच बीच में कुछ कहने के भाव से उसकी ओर देखता परन्तु फिर चुप रह कर उसे बात जारी रखने देता। युवक थोड़ा तीव्र होकर कह रहा था कि भारतीयों को बच्चे पैदा करने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि उनका जीवन स्तर इतना हीन है कि वे बच्चों का उचित पालन पोषण नहीं कर सकते।

उसके रुकने पर दूसरे व्यक्ति ने अपनी छोटी छोटी आंखें उठा कर उसे देखा और अपने बढ़े हुए दांतों को उघाड़कर मुस्कराता हुआ बोला "तुम बहुत समझदारी की बातें कर रहे हो दोस्त। मुझे तुम्हारी सूझ बूझ देखकर तुमसे जलन होती है।" फिर आंखों में विशेष चमक लाकर वह बोला, "अपने बाप को दुआ दो बेटा, जो वह तुम्हें इतना होनहार, खूबसूरत और अक़्लमंद बना गया है। अगर वह भी तुम्हारे बताये हुए असूल पर चलता, तो कहां यह सूरत होती, कहां यह दिमाग़ होता और कहां ये असूल की बातें होतीं।"

मैं उसकी बात सुनकर मुस्कराये बिना नहीं रह सका। मुझे मुस्कराते देखकर वह अपने पूरे दांत उघाड़कर मुस्कराता हुआ जरा सा सिर हिलाकर मुझसे बोला, "क्यों साहब ?"

यह मेरा हुसैनी के साथ पहला परिचय था।

कुछ देर बाद जब मैं डेक के तख़्ते पर बैठा समुद्र की ओर देख रहा था, तो उसने पीछे से आकर मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैंने चौंक

कर पीछे की ओर देखा। वह मुस्कराता हुआ बोला, "क्यों साहब, अन्धेरे में भी आइडिया चलता है क्या ?"

उसका बात कहने का ढंग बड़ा रोचक था। मैं तख्ते पर जरा सरक गया। वह बैठता हुआ बोला, "अभी थोड़ी देर में चांद निकलेगा, तब तो आइडिया अपने आप चलेगा। मगर यार, इतने अन्धेरे में तो यह जरा मुश्किल काम है।"

"उसे कहां छोड़ आये?' मैंने उससे उसके साथी के विषय में पूछा।

"वह तो वहीं ट्रंप हो गया था। उसके बाद नहीं मिला।"

वह बैठकर एक घनिष्ठ मित्र की तरह बात करने लगा। वह उन व्यक्तियों में से था जिनके दूसरों के प्रति व्यवहार में किसी तरह का संकोच नहीं होता, और जो दूसरों में अपने प्रति किसी तरह का संकोच नहीं रहने देते। वह बड़ी बेतकल्लुफी से अपने हाथ का मेरे कंधे पर प्रयोग करता हुआ मुझे कहां जाकर किस होटल में ठहरना चाहिए, इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देने लगा। परन्तु बात करते हुए बीच में ही रुककर उसने मेरा ध्यान ऊपर टूरिस्ट क्लास की रेलिंग की ओर आकृष्ट किया। वहां से कुछ युवक और युवतियां थर्ड क्लास के डेक की ओर झांक रहे थे और वहां की साथ साथ लगी हुई शय्याओं की ओर संकेत करके रिमार्क देते हुए हँस रहे थे। एक युवक अपना कैमरा आंख से लगाकर उसका कोण ठीक कर रहा था।

"देखो ये साले लोग एक्का बादशाह और गुलाम की बाजी खेल रहे हैं।" वह बोला।

"मतलब ?" मैंने उसकी बात न समझकर पूछा। हुसैनी की भाषा में बहुत से ताश से सम्बन्ध रखने वाले मुहावरे थे जो शायद उसकी अपनी ही ईजाद थे।

"फ्लैश खेलना जानते हो ?" उसने पूछा।

"नहीं ।"

"तो क्या सीखा है? खैर, फ़्लैश में किसी के हाथों एक्का बादशाह और बेगम हों तो उनसे बड़ा सीक्वेंस बनता है। मगर अगर एक्का बादशाह गुलाम हो तो सीक्वेंस टूट जाता है और तीनों बड़ी बड़ी तस्वीरें हाथ में रहते हुए भी बाज़ी किसी काम की नहीं होती।" बात की व्याख्या करते हुए उसकी आंखों में चमक आती जा रही थी। वह फिर बोला, "तो ये लोग वही बाज़ी खेल रहे हैं। सालों के अपने पास कुछ है नहीं और हम दुग्गी चौकी वालों को ये अपना एक्का बादशाह गुलाम दिखाकर हम पर रोब डाल रहे हैं। आखिर दुनिया में हालत इनकी भी वही होती है जो हम दुग्गी चौकी वालों की। सिर्फ ये जरा पिटकर अपनी जगह पर आते हैं।"

और बात समाप्त कर उसने मेरे कंधों को पुनः अपने हाथ का निशाना बनाते हुए कहा, "है नहीं ट्रम्प ?"

"ट्रम्प तो जोरदार है," मैंने कहा, "मगर मेरे कन्धे पर मत लगाओ।"

"यह बात तुमने मजेदार कही," उसने कहा और एक हाथ मेरे कंधे पर और लगा दिया।

मंगलौर में हुसैनी और मैं एक ही होटल में ठहरे। वह एक छोटा सा ब्राह्मण होटल था और हुसैनी ही मुझे वहां पर ले गया था। उस होटल में मैंने एक यज्ञोपवीधारी महाराज को हुसैनी का जूठा गिलास उठाकर ले जाते देखा तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मेरी यह धारणा थी कि दक्खिण भारत के ब्राह्मण बहुत कट्टर होते हैं और स्पृश्यास्पृश्य की सीमाओं में अपने को जकड़े रखते हैं। परन्तु उस ब्राह्मण महाराज ने ही बतलाया कि वह कट्टरता अब एक बहुत छोटे समुदाय में शेष रह गई है; नई पौध उन विचारों को आश्रय नहीं देती।

इस बीच में मैं हुसैनी के विषय में बहुत कुछ जान गया था। वह कलकत्ते के एक झूठे मोतियों के व्यापारी का लड़का था, और आरम्भ में कई वर्ष अपने पिता के साथ ही काम करता रहा था। परन्तु एक बार जब उसके पिता ने उस पर यह प्रकट किया कि वह उन्हीं की वजह से रोटी कमाकर खा रहा है, तो वह उसी घड़ी उनकी दुकान से उतर आया और तब से लौटकर उनके पास नहीं गया। जिस समय उसने अपने पिता की दुकान छोड़ी वह अकेला नहीं था, उसकी पत्नी और दो बच्चे भी थे। उसे अपनी पत्नी और बच्चों से बहुत प्रेम था, और वह उन्हें अधिक से अधिक सुविधायें देना चाहता था। परन्तु उसकी शिक्षा बहुत थोड़ी थी, और कलकत्ते में नौकरी करके वह कुल साठ रुपये ही कमा पाता था, जो उसके परिवार के लिये काफी नहीं होते थे। उसे यह देखकर बहुत व्यथा होती थी कि उसके बच्चे पीले पड़ते जा रहे हैं और उसकी पत्नी बाईस वर्ष की आयु में ही अपने शरीर की सुन्दरता खो रही है। अन्त में उसे एक ताश कम्पनी की ओर से यह काम मिल गया। इसमें वह कुल मिलाकर दो सवा दो सौ रुपया प्रतिमास बना सकता था। परन्तु साल में ग्यारह महीने उसे सफर में रहना पड़ता था। कभी कभी तो वह लगातार आठ आठ नौ नौ महीने घर से बाहर रहता था। इसी वजह से उसे यह काम पसन्द नहीं था। वह निरन्तर इस दुविधा में रहा था कि घरवालों के पास रहना और उन्हें अभाव में रखना अधिक अच्छा है, या उनसे दूर रहकर उन्हें अधिक सुविधाएं देना। उसकी पत्नी चाहती थी कि वह घर पर ही रहे उन्हें चाहे कैसा ही जीवन व्यतीत करना पड़े। वह भी कई बार यही सोचता था और दौरे के दिनों में इसका निश्चय भी कर लेता था, परन्तु घर पहुँच कर जब वह देखता कि उसके बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा हो रहा है और उसकी पत्नी का सौंदर्य भी अपने पहले रूप में आ रहा है तो वह इसकी कल्पना भी नहीं करना चाहता कि वह घर में बैठकर

बच्चों को उनके स्वास्थ्य से और पत्नी को उसके सौन्दर्य से वंचित होते हुए देखे। तब वह तर्क करके और कुछ आकाश चित्र खींचकर पत्नी के आग्रह को दबाता और पन्द्रह बीस रोज़ उन लोगों के पास रह कर फिर से दौरे पर निकल पड़ता। इस बार भी उसे कलकत्ते से चले हुए लगभग चार महीने हो चुके थे और उसे कलकत्ते लौटने से पहले अभी साढ़े तीन चार महीने और दक्षिण भारत में घूम कर ताश के आर्डर लेने थे।

"ऐसी जिन्दगी बिताने के लिए वाकई बहुत धीरज चाहिए" जब बात चल रही थी तब मैंने उससे कहा।

"पहले तो कई बार मैं बहुत परेशान हो जाता था," हुसैनी बोला "मगर अब मैंने अपने को खुश रखने का एक गुर सीख लिख है, और वह गुर है खुश रहना। मैं कभी उदास होने लगता हूँ तो जिस किसी के भी पास जाकर मजाक की दो बातें कर लेता हूं। वह मुझे हँसोड़ समझता है और मेरी तबीयत बदल जाती है। मगर फिर भी, कभी कभी बड़ा मुश्किल हो जाता है।"

हुसैनी की खुशदिली में कोई सन्देह नहीं था। उसे अपने चारों ओर कुछ न कुछ ऐसा दिखाई दे ही जाता था, जिस पर वह कोई चुस्त सा फिकरा कह सकता या हँस सकता। शाम को मंगलौर में एक नया होटल खुल रहा था। जिसका उद्घाटन करने मैसूर के राजप्रमुख आ आ रहे थे। जब राजप्रमुख की कार आई तो बाजार में कई व्यक्तियों की भीड़ कार के ईर्द गिर्द जमा हो गई। हुसैनी मुझसे बोला "ये लोग भाग भाग कर देख रहे हैं कि राजप्रमुख की कार भी पहियों पर ही चलती है या हवा में उड़ती है। जब देखते हैं कि उसके नीचे भी पहिये हैं तो बड़े हैरान होते हैं।"

"हँसने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है," हुसैनी ने रास्ते में चलते हुए कहा, "कम से कम आज कल की दुनियां में तो नहीं।

अगर मंगलौर का जौहरी अपनी दुकान में सोने के साथ मौसम्बियाँ बेचता है तो इसीलिए कि मेरे जैसा आदमी रास्ते से गुजरता हुआ एक बार रुक कर जोर से ठहाका लगा सके।"

और सचमुच उसने मुझे वहाँ जौहरियों की दुकानें दिखाईं, जिसमें सोने के आभूषणों के अतिरिक्त मौसम्बियाँ भी बिकने के लिए रखी हुई थीं।

मंगलौर की एक विशेषता यह है कि वहाँ अधिकांश घर इस तरह खुले खुले बने हुए हैं कि पूरे नगर को एक उद्यान-नगर कहा जा सकता है। सुरुचि और सादगी ये दोनों विशेषताएं वहाँ के घरों में हैं, जिससे साधारण से घर भी साधारण नहीं लगते। घूमते हुए हम एक छोटी सी पहाड़ी पर चले गये। वहाँ से नगर का रूप कुछ ऐसा लगता था जैसे नारियल के झुंडों में बीच बीच कहीं सड़कें और घर बना दिये गये हों। दूर समुद्र की सीमान्त रेखा भी दिखाई देती थी। मैं पहाड़ी के एक कोने पर खड़ा देर तक नगर के उस सौन्दर्य को देखता रहा। आरंभ से उत्तर भारत के घुटे हुए तंग नगरों में रहने के कारण यह भिन्नता मुझे और भी आकर्षक लग रही थी। जब मैं चलने के विचार से वहाँ से हटा तो मैंने देखा कि हुसैनी पहाड़ी के दूसरे सिरे पर एक पत्थर पर बैठा गम्भीर भाव से आकाश की ओर देख रहा है। मुझे उसकी यह गम्भीरता देखकर आश्चर्य हुआ। उसकी दृष्टि उस समय कुछ ऐसी हो रही थी कि मैंने उसे सहसा बुलाना उचित नहीं समझा। मेरे निकट पहुँचने पर हुसैनी ने क्षणभर के लिये मेरी ओर देखा और फिर आंखें हटाकर बोला, "तुम यहां से अकेले होटल तक जा सकते हो?"

"तुम नहीं चल रहे?" मैंने पूछा।

"मैं जरा देर से आऊँगा।" उसने उसी तरह दूसरी ओर देखते हुए कहा।

"मैं भी देर से चला चलूँगा," मैंने कहा, "मुझे वहां जाकर क्या करना है ?"

"नहीं," वह बोला, "तुम जाओ। मैं कह नहीं सकता कि मैं किस वक्त आऊं।"

उसका मूड सहसा क्यों इस तरह बदल गया, यह मेरी समझ में नहीं आया। मैंने उससे उस विषय में पूछना कुछ उचित नहीं समझा और उसे वहीं छोड़कर वहां से चल पड़ा। होटल में आकर मैंने खाना खाया और फिर घूमने निकल गया। जब मैं वापस होटल पहुँचा, हुसैनी अभी नहीं आया था। मैं अपने कमरे में बैठकर कुछ देर तक एक उपन्यास पढ़ता रहा। लगभग दस बजे सोने से पहले मैंने एक बार फिर उसके कमरे के बाहर जाकर देखा वह तब तक भी नहीं आया था। पहले मेरा मन हुआ कि उसे देखने के लिए उसी पहाड़ी पर जाऊं। परन्तु फिर यह सोचकर कि वह इतनी देर से वहीं तो होगा नहीं, और कुछ नींद के प्रभाव के कारण मैं अपने कमरे में आकर लेट गया। लेट कर पहले तो मुझे लगता रहा कि मेरा पलंग जहाज की तरह डोल रहा है। फिर धीरे धीरे मुझे नींद आ गई।

मुझे सोये अभी आध पौन घन्टा ही हुआ होगा, जब दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी और मैं उठ बैठा। बत्ती जलाकर दरवाजा खोला तो देखा कि हुसैनी है।

हुसैनी का चेहरा उस समय बदला हुआ था। उसकी आंखें थोड़ी लाल हो रही थीं और भाव कुछ ऐसा हो रहा था जैसे वह कोई अपराध करके आया हो। मुझे सन्देह हुआ कि उसने शराब पी है। परन्तु यह बात नहीं थी।

"माफ़ करना, तुम्हारी नींद खराब की है," हुसैनी ने कहा, "दर-असल में मुझे माफी तो उस वक्त के लिये भी मांगनी चाहिए, मगर

इस तरह तकल्लुफ़ करूंगा तो असली मक़सद पर नहीं आ सकूंगा। मैं इस वक्त तुमसे एक मदद लेने आया हूँ।"

उस जैसा सजीव व्यक्ति इस तरह की बात करता हुआ अजीब लग रहा था।

"मदद की फिक्र छोड़ो, तुम बात करो," मैंने कहा "मेरे साथ बाहर घूमने चलो।"

"बस इतनी सी बात है?"

"हां इतनी सी ही बात है।"

मैंने दरवाजा बन्द किया और उसके साथ चल पड़ा। सड़क पर आकर उसने कहा, "बोलो, किधर चलें?"

मैं उस समय उसे बिल्कुल नहीं समझ पा रहा था। वह स्वयं ही मुझे लेकर आया था और मुझी से पूछ रहा था कि कहां चलें।

"तुम जहां चलना चाहो चलो," मैंने कहा।

"नहीं" वह बोला, "तुम जहां चाहो चलो। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। इस वक्त मेरी अपनी मर्जी कुछ नहीं है।"

"किसी पार्क में चलें?" मैंने थोड़े में समाप्त करने के लिए पूछा।

"मुझसे नहीं पूछो," वह बोला, "यह कहो कि चलें।"

"तो आओ पार्क में बैठेंगे," मैंने कहा, "रास्ता मैं नहीं जानता। रास्ता तुम बताओ।"

हम दोनों चुपचाप चलने लगे। मैं चलता हुआ उसी के विषय में सोच रहा था। उस तरह के व्यक्ति की ऐसी मनोदशा अस्वाभाविक नहीं थी परन्तु उसका कारण क्या हो सकता है, यह मैं अनुमान नहीं लगा पा रहा था।

पार्क में पहुँचकर हम एक जगह घास पर बैठ गये। मैंने हुसैनी से उस विषय में कुछ नहीं पूछा। कुछ देर बाद वह स्वयं ही बोला, "दोस्त बुरा नहीं मानना। मैं रास्ते में सोचता आ रहा था कि तुम मुझसे इस सबकी वजह पूछोगे तो मैं क्या वजह बताऊंगा। असली बात मैं तुमसे छिपाये रखना चाहता था। मगर तुमने कुछ नहीं पूछा इसलिए मैं अब तुमसे वह बात नहीं छिपाऊंगा।"

हुसैनी बाहें पीछे की ओर टिकाकर बैठ गया और आंखें उस कोण पर जहां से वे मेरे बालों के ऊपर ऊपर ही देख सकती थीं, धीरे धीरे कहने लगा, 'देखो दोस्त, उस वक्त पहाड़ी पर मेरी तबीयत एक दम उदास हो गई थी, यह कोई नई चीज नहीं है। बहुत बार मेरे साथ ऐसा होता है। जब मुझे घर से निकले दो तीन महीने हो चुकते हैं तो इस तरह के मौक़े अक्सर आने लगते हैं। मेरा काम घूम कर आर्डर लेने का होता है और जिस किसी शहर में मैं जाता हूं, वहां चार पांच बजे तक घूमकर अपने सौदागरों से माल के आर्डर ले लेता हूँ। शाम को मैं अक्सर अकेला पड़ जाता हूँ और अकेला ही इधर उधर घूमने निकल जाया करता हूं।"

यहाँ पर रुक कर हुसैनी ने दृष्टि ज़रा नीची करके मुझे देखा और पुनः दृष्टि उसी कोण पर रखकर बोलने लगा, "ऐसे घूमते हुए मेरी हमेशा यही कोशिश होती है कि मैं लोगों के बीच में रहूं, ऐसी ही जगह जाऊं जहाँ चार आदमी और भी हों। परन्तु कभी कभी मैं जान बूझ कर किसी अकेली जगह पर चला जाता हूं, और वहां इसी तरह की उदासी मुझे घेर लेती है। क्यों ऐसी खाहिश होती है और क्यों मैं जान बूझकर अकेली जगह पर चला जाता हूँ, यह मैं नहीं कह सकता। शायद उदास होकर भी मुझे कुछ तस्कीन मिलती है। खैर ऐसे वक्त में बैठकर सोचने लगता हूं और मुझे महसूस होता है कि

मेरी जिन्दगी का कोई मतलब नहीं है। मैं रातदिन बसों और गाड़ियों में सफ़र करता हूं, होटलों का गन्दा खाना खाता हूँ और मेरे लिए जिन्दगी में इतना भी नहीं कि शाम को मुझे दोस्तों का साथ या घर वालों की मुहब्बत ही नसीब हो। मैं बीबी और बच्चो की मुहब्बत के मारे जगह जगह की राख झोंकता फिरता हूँ और वह मुहब्बत भी जैसे मेरे लिए खाली तसब्बुर की चीज है। ऐसे मौकों पर सोचते हुए मैं बेहद परेशान हो उठता हूं।

"आज शाम को ही उस पहाड़ी पर बैठे हुए मैं यही सोचने लगा था कि एक शाम के लिये मैं एक आदमी को अपना साथी बनाता हूं, मुझे उसके साथ वक्त बिताकर खुशी होती है, मगर मैं दूसरी शाम के लिये उसके साथ की उम्मीद नहीं कर सकता। मैं कल चिकमंगलुर चला जाऊंगा और तुम कनानोर और एक बार की बात हो तो कुछ नहीं। मेरी तो रोज रोज की जिन्दगी ही यही है। फिर ...

यहां उसने पुनः मेरी ओर देखा और इस बार दृष्टि नीची करके एक ओर को देखता हुआ बोला, "एक बात और भी है।" मैं अपनी बीवी से बहुत मुहब्बत करता हूं और जानता हूँ कि वह भी मुझे कितना चाहती है। मगर

वह बोलता बोलता रुक गया। मैंने प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह फिर बोला, "मगर तुम समझ सकते हो कि इतने इतने दिन दूर रहकर इंसान क्या महसूस कर सकता है, खास तौर पर इस तरह की अकेली जिन्दगी बसर करता हुआ। मुझे कभी कभी अपनी नसों में शिद्दत का तूफान उठता महसूस होता है। मुझे उस वक्त लगता है कि मेरी सूरत एक पागल की सी नजर आ रही होगी। मेरे मन में कई कई तरह के ख्याल उठते हैं। कभी मैं सोचता हूँ कि यह सिर्फ एक जिस्मानी जरूरत है जिसे पूरा कर लेने में कोई हर्ज

नहीं। फिर यह सोचता हूं कि यह जिस्मानी जरूरत सिर्फ मर्द को ही नहीं महसूस होती, औरत को भी तो होती होगी। फिर मेरे मन में यह सवाल शैतान की तरह जाग उठता है कि जब मर्द के लिए इस हालत पर काबू पाना इतना मुश्किल है तो औरत के लिए कैसा होगा और फिर मेरे दिमाग पर हथौड़ा पड़ने लगता है कि मुझे क्या पता है? मैं क्या जानता हूं? मुझे मालूम है कि यह मेरे दिल की कमजोरी है। मेरी बीवी मुझे बेहद चाहती है और जब मैं घर जाता हूँ तो वह हर बार यही जोर देती है कि मैं यह नौकरी छोड़ दूं और उसके और बच्चों के पास ही रहूं। मगर फिर भी मैं अपने खयालात को काबू में नहीं रख सकता। मैं जितना अपने को इन खयालात के लिए कोसता हूं, ये उतना ही ज्यादा मुझे तंग करते हैं।

"आज तुम्हारे चले जाने के बाद मैं देर तक वहीं बैठा रहा। यही परेशानी फिर मेरे दिमाग में थी। जब मैं वहाँ से चला, तो ख्याल आया कि खाने के वक्त तक होटल पहुंच जाऊंगा। मगर रास्ते में एक आदमी धीमी आवाज़ में कुछ बोलता हुआ मेरे पास से निकला। मैं समझ गया था कि वह किसी रण्डी का दलाल है। मेरा अपने दिमाग पर से काबू उठने लगा। मैंने रुक कर पीछे की तरफ देखा। वह आदमी मेरे पास आ गया। मैंने उसके साथ बात की। वह कहने लगा कि एक प्राइवेट छोकरी है, पांच रुपये लेगी, मैं उसके साथ चल पड़ा। वह मुझे कई सड़कों पर घुमा कर एक तरफ से नीचे की ओर कच्चे रास्ते पर ले चला। आगे दो तीन झोंपड़ियां थीं। इनमें से एक में वह मुझे ले गया। अन्दर लालटेन की रोशनी में एक जवान लड़की एक बच्चे को खाना खिला रही थी। मुझे देखकर वह उठ खड़ी हुई। वह आदमी अपनी जबान में उससे बात करने लगा। उसी वक्त मेरी आंखों के सामने अपने घर का नकशा घूम गया। मुझे लगा कि वहां मेरी बीवी, शायद इस वक्त खुदा से मेरी सलामती की मन्नत मना रही

होगी और—और मैं यहाँ अपने को ज़लील करने जा रहा हूँ। फिर मैंने उस घर की मुफ़लिसी को देखा और मुझे अपने मुफ़लिसी के दिन याद आ गये। वह आदमी उस बच्चे को और उसकी खाने की थाली को उठाकर बाहर चलने लगा तो मैंने उससे कहा कि वह पहले बाहर आकर मेरी बात सुन ले। वह कुछ हैरान होकर और बच्चे को वहीं छोड़कर मेरे साथ बाहर आ गया। बाहर आकर मैंने उससे कहा कि मेरी मर्ज़ी नहीं है। वह सड़क तक मेरे पीछे पीछे आया और कहता रहा कि मैं पाँच नहीं देना चाहता तो चार ही रुपये दे दूँ चार नहीं तो तीन ही दे दूँ......मगर मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"सड़क पर आकर मैं बिना रास्ता जाने एक तरफ़ को चलने लगा। मेरा वास्ता पहले भी ऐसे दलालों से पड़ा है, मगर खुदा जानता है पहले कभी मैं इस हद तक आगे नहीं गया। वह मुझ से कोई जवाब न पाकर लौट गया। मुझे उस वक्त अपने से नफरत हो रही थी। सोच रहा था कि अगर मेरी जिन्दगी उसी तरह मुफ़लिसी और तंगहाली में कटती तो क्या कहा जा सकता है कि क्या होता? अब चाहे कितनी परेशानी उठानी पड़ती है, मगर वह तंगहाली तो नहीं है। किसी तरह शराफत से जिये जा रहे हैं। मगर फिर मेरे दिमाग़ में वही बात आने लगी कि मैं आखिर उस हद को हाथ तो लगा आया हूं। मर्द जिस हद तक जा सकता है क्या औरत उस हद तक नहीं जा सकती? और फिर वही खयाली बवंडर मेरे दिमाग़ में उठने लगा कि मुझे क्या पता है? मैं कैसे जान सकता हूँ? मेरा मन होने लगा कि मैं लौट चलूं। अभी थोड़ा ही रास्ता आया हूं, लौट कर जा सकता हूँ। एक बार मेरे कदम मुड़ भी गये। मगर फिर मैंने एक गुजरते हुए ताँगे को रोक लिया और उसे होटल का नाम बता दिया। ताँगे में बैठे हुए भी मेरा मन हुआ कि उसे रोक दूं और उतर कर वापस चला जाऊं। मगर धीरे धीरे ताँगा दूर निकल आया और मैं होटल पहुँच गया।

होटल में अपने कमरे के दरवाज़े के बाहर मैं एक मिनिट खड़ा रहा। एक मन अब भी मुझे कह रहा था कि मैं दरवाजा न खोलूं और वापस चला जाऊं वह घर नहीं तो कोई और घर सही। कई पूछने वाले दलाल मिल सकते हैं। मगर मेरा दूसरा मन मुझे धकेल कर तुम्हारे कमरे के बाहर ले गया और मैंने तुम्हारा दरवाज़ा खटखटा दिया। उसके बाद से मैं तुम्हारे साथ हूं।"

हुसैनी की दृष्टि में अब भी अपराध की छाया वर्तमान थी। मैं उसके हृदय की अवस्था का अनुमान लगा पा रहा था। मैं जान बूझ कर उससे अब और और विषयों की बात करने लगा।

काफी देर तक हम वहीं बैठे रहे। वैसे उससे पहली रात को जहाज में मैं ठीक से नहीं सो पाया था इसलिए मेरी आंखों में नींद बुरी तरह भर रही थी। आखिर मैंने वापस चलने का प्रस्ताव किया। हुसैनी चुपचाप उठकर साथ चल दिया। रास्ते में वह मुझसे जरा आगे आगे चलता रहा।

दिन में जिस समय मैं सोकर उठा, शायद ग्यारह बज रहे थे। हुसैनी भी देर से ही उठा था, क्योंकि उस समय वह बाथरूम से नहा कर आ रहा था। मुझे उठे हुए देखकर उसने मुस्कराते हुए बाहर से आदाब की। उसके चेहरे पर उसका खुशदिली का भाव लौट आया था। पूरी नींद के बाद नहाकर उसमें ताज़गी भर गई थी।

"नींद पूरी हो गई?" उसने मुझसे पूछा।

"हाँ हो ही गई।"

"आज तुम्हारी दावत कर रहा हूँ।" वह खिड़की के पास आकर बोला।

"उन पाँच रुपयों की?" मैंने मुस्कराकर ज़रा शरारत के भाव से पूछा।

"नहीं" हुसैनी अपने उभरे हुए दाँत विशेष अंदाज से उघाड़कर मुस्कराता हुआ बोला, "वे पाँच रुपये तो मिठाई के लिए घर बीवी को भेज रहा हूं। दावत का एक रुपया तुम्हारा नज़राना है। उधर मेरे कमरे में आओ" और वह आँख चमका कर उसी तरह मुस्कराता हुआ अपने कमरे की ओर चला गया।

हुसैनी जो बात कह गया था, उससे मुझे मोपासाँ की कहानी 'सिग्नल' का अन्तिम वाक्य याद आ गया और मैं मन ही मन मुस्करा दिया। मगर सोचता हूं कि हुसैनी ने वह कहानी भला कहाँ पढ़ी होगी।

समुद्र तट का होटल

दूसरे दिन मैंने मंगलौर से कनानोर की गाड़ी ले ली। शिमले में जिस व्यक्ति के मुझे कनानोर जाकर ठहरके का दरावर्श दिया था यह भी बतलाया था कि वहाँ समुद्रतट पर ही एक छोटा सा होटल है जो काफी सस्ता है और जिसके डाइनिंग रूम में बैठकर चाय पीते हुए क्षितिज के पास से गुजरते जहाज देखे जा सकते हैं। एक सप्ताह के लिए वह उस होटल में ठहर चुका था। मेरा विचार भी उसी होटल में जाकर ठहरने का था।

मंगलौर से कनानोर तक की यात्रा में मैंने देखा कि रेल की पटरी के दोनों ओर थोड़े थोड़े अन्तर पर बने हुए घरों की श्रृंखला इस तरह अविछिन्न चली चलती है कि देखकर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि कहाँ एक बस्ती समाप्त हुई और कहाँ दूसरी आरम्भ हुई। सारा प्रदेश ही जैसे एक बहुत बड़ा गाँव है जिसमें नारियल पेड़ों से घिरे हुए छोटे छोटे घर एक दूसरे से जरा हटकर बने हुए हैं। बीच में खेत हैं।

कहीं खेतों में (शायद पक्षियों को डराने के लिए) बांस पर लगाया कपड़े का गुड्डा दिखाई दे जाता है, कहीं कोई ग्राम देवता कहीं बिजली के तारों पर बैठी हुई तोतों की पंक्तियां और कहीं गाड़ी समुद्र से सौ, दो सौ गज के अन्तर पर चलती हैं तो समुद्र के ऊपर उड़ते हुए समुद्र कपोत और कुछ दूसरे पक्षी। एक घर की बाहरी दीवार पर लगी हुई दीवार घड़ी, नेगावली नदी का नन्हा सा हरा-भरा द्वीप बैक वाटर्ज में किनारे के एक एक फुट पानी में पेट के बल लेटकर मजे से बात करते हुए युवक, छतरी जैसी टोपियां, पहने हुए नाविक, टोकरियां उठाये हुए खेतों में से गुजरती हुई युवतियां। चलती गाड़ी से देखे गये इस साधारण जीवन की एक स्थायी छाप मस्तिष्क पर रह गई है।

कनानोर उतरने पर मुझे बतलाया गया कि वहां समुद्र तट पर एक ही होटल है, चोईस। मैं स्टेशन से सीधा वहीं पर चला गया। वहां पहुँच कर मैंने देखा कि वह एक यूरोपियन होटल है, जिसमें अधिकतर रिटायर्ड यूरोपियन सेहत बनाने के लिए आकर ठहरते हैं। यह भी पता चला कि समुद्रतट पर एक दूसरा भी होटल था (और शायद उसी के विषय में मुझे बतलाया गया था) जो दो वर्ष पहले बन्द हो गया है। चोईस होटल काफी मँहगा और मैं अपने दो महीने के बजट से वहां कुल बीस दिन रह सकता था। मैंने उस समय वहां कमरा तो ले लिया, और सोचा कि आगे का निश्चय चाय पीकर आराम से करूँगा।

चोईस होटल ठीक वैसी जगह नहीं था, जैसी जगह पर मैं ठहरना चाहता था। वह खुले 'बीच' पर बना हुआ होटल नहीं था बल्कि तट के एक ऊंचे कगार बना हुआ था। समुद्र की ओर होटल का एक छोटा सा लान था, जिसके सिरे की मुंडेर के पास खड़े होकर नीचे समुद्र की ओर झाँका जा सकता था। परन्तु मैं ऐसी जगह चाहता था, जहां से दौड़ते हुए जाकर समुद्र की लहरों का आलिंगन किया जा सके और

जहां से बाहर निकलते ही मीलों तक आधी आधी पिंडली पानी में टहलते हुए चला जा सके। यह कल्पना शायद बम्बई के जुहू बीच पर कुछ समय रहने के कारण बन गई थी।

चोईस में अपने कमरे के बरामदे में बैठकर चाय पीते हुए भी मैं कोई निश्चय नहीं कर सका। आगे जाकर भी वैसी ही समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा, यह नहीं कहा जा सकता था। वहाँ रह जाने का अर्थ था अधिक से अधिक एक महीना वहाँ बिता कर सीधे लौट जाना। मैं कुमारी तक अवश्य जाना चाहता था। मैंने सोचा कि जरा घूम आऊं, फिर निश्चय करूंगा।

चोईस होटल की बगल में यूरोपियन क्लब है, और क्लब के इस तरफ के थोड़े से घर छोड़ कर कगार का खुला भाग आ जाता है। मैं टहलता हुआ कगार के सिरे पर चला गया। सिरे की चट्टान पर खड़े होकर मैंने देखा कि वहाँ से तीस चालीस फुट नीचे एक 'बीच' आरंभ होता है जो काफी दूर तक चला गया। बांईं ओर भी एक छोटासा 'बीच' है। बड़े 'बीच' पर बहुत से लोग टहल रहे थे। छोटे 'बीच' पर एक यूरोपियन परिवार के पांच छः सदस्य बेदिंग कास्टयूम पहने पानी में किलोल कर रहे थे। उतनी ऊंचाई से उस दृश्य को देखना जमीन के ऊपर उठ कर जमीन को देखने की तरह था। दूर समुद्र के अर्द्ध गोलाकार क्षितिज पर उस समय दाईं ओर से एक जहाज प्रविष्ट हो रहा था। वह भी मुझसे नीची दुनिया के रंगमंच पर चल रहा था। रफाक—कगार की चट्टानों से एक लहर जोर से टकराई। मैं नीचे 'बीच' पर जाने के लिये वहाँ से मुड़ पड़ा।

"कोब्रा!" वहाँ से मुड़ते ही मुझे यह शब्द सुनाई दिया। जिस चट्टान पर मैं खड़ा था, उससे थोड़ा हटकर एक दूसरी चट्टान पर एक सांप रेंग रहा था। लोग दूर से उसे देख रहे थे। वह गहरे मोतिया रंग का साँप था जिसके शरीर पर काले रंग की हल्की हल्की लकीरें थीं।

वह बहुत सतर्क गति से चल रहा था। उसकी गति में यह विशेषता थी कि उसका शरीर मार्ग पर उसी तरह बहता सा लगता था, जैसे आगे के पानी द्वारा बनाये गये मार्ग पर पीछे की धारा बहती चलती है। मार्ग के निर्धारण के लिए उसका फण जरा सा मुड़ता था और शेष शरीर उसी निर्धारित मार्ग से होकर निकल जाता था। एक लड़के ने उसकी ओर पत्थर फेंका। साँप ने एक बार जरा सा सिर उठाया और शीघ्रता से चट्टान के एक ओर मिट्टी के अन्दर चला गया।

मैं सड़क पर से घूम कर और एक जगह जमा पानी पर बने एक टूटे हुए पुल पर से गुजर कर 'बीच' पर पहुंच गया। चट्टानों में से होकर कूदते हुए भी 'बीच' तक जाया जा सकता था, परन्तु उस रास्ते का पता मुझे बाद में चला।

'बीच' पर से उस समय समुद्र की लहरें बड़ी बड़ी शार्क मछलियों की तरह सिर उठाती हुई दिखाई दे रही थीं। कई मछुए साथ लगकर दो डोंगियों को किनारे से पानी में ढकेल रहे थे। डोंगियां सरक रही थीं और रेत पर गहरी लकीरें खींचती जा रही थीं। एक डोंगी पानी में पहुँच गई, और सामने से आती हुई लहर पर सवार होकर आगे निकल, फिर दूसरी लहर पर सवार होकर और आगे। दूसरी डोंगी भी उसी तरह उसी के पीछे पीछे चली। इसी तरह वे दूर निकल गईं।

ऊपर कगार की चट्टानों पर कुछ लोग आ गये थे, जिनकी आकृतियां सूर्यास्त की झिलमिल में काली दिखाई दे रह थीं। 'बीच' पर से ऊपर की दुनिया अलग दुनिया लग रही थी। कुछ लोग चट्टानों पर से कूदते हुए नीचे उतरने लगे। मेरा मन हुआ कि मैं फिर से ऊपर चला जाऊं और वहां से उसी रास्ते नीचे आऊं। परन्तु मैं उस समय पानी में खड़ा था और लहरों के लौटने पर पैरों के नीचे से सरकती हुई रेत

शरीर में विचित्र गुदगुदी पैदा कर रही थी अतः मैं वहाँ उसी तरह खड़ा रहा।

पानी में उस समय सूर्यास्त के समय के नाना हल्के हल्के रंग झलक रहे थे। तांबई, बैंजनी, कत्थई। किनारे की ओर आती हुई हर लहर के आगे झाग का सफेद बार्डर बन जाता था, जो लहर के लौट जाने पर भी थोड़ी देर बना रहता था। बढ़ता हुआ पानी सूखी रेत को भिगो जाता था, परन्तु पानी के हटते ही वह फिर सूखने लगती थी। पानी उसे फिर भिगो जाता था और कितने ही कंकड़ों की शक्ल में छोटे छोटे जीव उछलते हुए रेत में सूराख करके उनमें समा जाते। वातावरण में ढिर-री टिर-री की ध्वनि व्याप्त हो रही थी मुझे लगा कि ऐसे ही समय और ऐसे ही वातावरण को संन्ध्या कहा जा सकता है। दिल्ली के कनाटप्लेस में कभी संन्ध्या नहीं होती। वहां केवल दो ही समय होते हैं,—दिन और रात !

एक वृद्ध लुंगी पर पेटी बांधे, सिगरेट सुलगाये, धड़ हिलाता हुआ टखने टखने पानी में घूम रहा था। कुछ लड़कियां पेटीकोट पिंडलियों तक उठाये किनारे की ओर आती हुई लहरों पर से उछल रही थी। उधर छोटे 'बीच' की तरफ से यूरोपियन परिवार के किलकारने की आवाजें सुनाई दे रही थीं।

मैंने सोचा कि कुछ दिन और कनानोर में रहना चाहिए।

जिस समय मैं वापस चोइस होटल में पहुंचा, मैंने देखा कि मेरे साथ के दोनों कमरे भी भर गये हैं। वे दोनों कमरे एक दम्पति ने ले लिये थे और उस समय वे लान में अपने चार बच्चों के साथ 'दाई-छू' का खेल खेल रहे थे। सामने के कमरे में एक गठिये की मरीज बूढ़ी मेम अपनी एक परिचारिका के साथ ठहरी हुई थी। वह अपने कमरे के बाहर खड़ी चिल्ला चिल्ला कर उनको शाबाश दे रही थी।

रात को जब बुढ़िया अपनी परिचारिका सहित उन लोगों के साथ ताश खेलने आ गई, मुझे हर दो मिनट के बाद उसकी चीखती हुई आवाज में 'गुड ग्रेशस' 'ओ माई लार्ड' 'वट ए हैंड' आदि वाक्य और एक मोटी धार के पाइप के सहसा खुलकर बन्द हो जाने जैसी हंसी सुनाई देने लगी तो मैंने निश्चय किया कि चोईस होटल में रह कर अपना बजट खराब करने का कोई अर्थ नहीं।

पंजाबी भाई

कनानोर के सेवॉय होटल में मुझे तीस रुपये महीने पर जो रहने की जगह मिल गई, वह बहुत अच्छी थी। सेवाय होटल समुद्र तट पर नहीं था, पर समुद्र तट के पास था। उसमें खूब खुले खुले बरामदे और बड़े बड़े लान थे जिनमें दिन भर हवा आवारा घूमती रहती थी। सेवाय में कुछ थोड़े से ही लोग रेह रहे थे, अतः दिन भर वहां का वातावरण शान्त रहता था। किसी जमाने में वह होटल खूब चलता था और काफी मंहगा भी था, परन्तु पांच छः साल से उसमें आकर रहने वालों की संख्या बहुत कम हो गई थी जिससे वहाँ खाने का प्रबन्ध अब हटा दिया गया था, और कमरे मासिक तौर पर किराये पर दिये जाने लगे थे।

सेवाय में आने के दूसरे दिन सबेरे मैं बैठा कुछ लिख रहा था, जब एक लम्बा तगड़ा युवक मेरे दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया और बोला, "हैलो!"

मैंने थोड़ा आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा। वह पाजामा कुर्ता पहने बड़े ढीले ढाले ढंग से खड़ा मुस्करा रहा था। मैंने कुर्सी से उठते हुए कहा, "आइए।"

वह दहलीज़ के पास तक आकर बोला, "आप शायद कल ही आये हैं।"

"जी हाँ, मैं कल ही आया हूं," मैंने कहा।

"मैंने रात को आपकी बत्ती जलती देखी थी," वह दहलीज़ पार करता हुआ बोला, "मुझे बड़ी खुशी हुई कि होटल का एक और कमरा आबाद हो गया। वैसे तो होटल सुनसान पड़ा रहता है, आपने देखा ही होगा।"

"फिर भी मुझे यह बहुत पसन्द है," मैंने कहा, "काफी खुली जगह है।"

"आप इधर के तो नहीं लगते," कहता हुआ वह मेरे सामने रखी हुई कुर्सी की पीठ पकड़ कर खड़ा हो गया।

"जी नहीं, मैं उत्तर भारत से आया हूँ," मैंने कहा।

"उत्तर भारत के किस हिस्से से?" और वह कुर्सी के आगे आ गया। मुझे लगा कि अगला वाक्य कहते कहते वह कुर्सी पर बैठ जायगा।

"मैं पंजाब का रहने वाला हूं," मैंने उसके प्रश्न के उत्तर में कहा।

सहसा उसकी दोनों बाहें फैल गईं और वह "अच्छा, पंजाबी भरा ओ," कहता हुआ मेज के गिर्द से आकर मेरे साथ लिपट गया।

साँस रोक कर मैंने आलिंगन के क्षण बीत जाने दिये। मेरे गिर्द से बाहें हटाकर उसने मेरा हाथ मजबूती से पकड़कर हिलाया और पंजाबी में ही कहा कि परदेश में 'पंजाबी भरा' का मिल जाना 'रब' मिल जाने के बराबर है।

"यहाँ रहोगे न?" उसने ऐसे पूछा, "जैसे मैं उसी के पास

अतिथि के रूप में आकर ठहरा होऊं।

"शायद महीना बीस दिन रहूँगा," मैंने कहा।

"बड़ी अच्छी बात है," वह बोला, "मैं तो चार पाँच दिन तक पंजाब वापस जा रहा हूँ, पर जितने दिन हूं, अगर कोई भी सेवा हो तो मुझे बताइयेगा। परदेश में अपने देश का बन्दा दारू होता है। मैं हर वक्त सेवा के लिये हाजिर हूँ।"

"कोई जरूरत होगी तो मैं बता दूंगा," मैंने कहा। "मैं यहां एक साल से हूं। खड्डी के कपड़े का काम करने के लिए आया था...," कहता हुआ वह जमकर कुर्सी पर बैठ गया और मुझे अपना इतिहास सुनाने लगा। मैंने अपने कागज हटाकर एक ओर रख दिये और हथेलियों पर चेहरा टिका कर उसकी बात सुनने लगा। वह आधा घण्टा बैठकर मुझे बतला गया कि उसका नाम नन्दलाल कपूर है, उसका घर लुधियाने में है, उसके दो बच्चे हैं और दोनों ही बहुत खूबसूरत हैं, क्योंकि दोनों उसी पर गए हैं, उसकी बीवी उसकी पसंद की नहीं है, खड्डी के कपड़े का बाजार बहुत गिर गया है, कनानोर में साँप बहुत निकलते हैं, मलयालम् में अण्डे को मुट्टा कहते हैं और शाम को वहां फिल्म 'अनहोनी' दिखाई जा रही है। जिसे मिस नहीं करना चाहिए।

"जब दिल न लगे, मेरे कमरे में चले आइयेगा," उसने उठकर छाती के पास से कुर्ते को खुजलाते हुए कहा, "उस कमरे को भी अपना ही कमरा समझिये। देखिये तकल्लुफ मत कीजियेगा।"

वह चला गया तो मैंने सोचा कि अच्छा हुआ जो वह पहली ही भेंट में सारी बातें बता गया। अब न मैं उससे कुछ कहूँगा, न उसके पास कुछ कहने को होगा। मिलने पर दुआ सलाम हो जाया करेगी, बस।

मेरे सामने अब यह प्रश्न था कि खाना खाने कहाँ जाया करूं। बाजार कुछ दूर पड़ता था और दोपहर को धूप में हर रोज वहां जाना संभव नहीं था। मैं पास ही कहीं प्रबन्ध कर लेना चाहता था। मैंने दोपहर को होटल के चौकीदार को बुलाया। वह पहले वहां का बटलर था और अब भी अपना परिचय बटलर के रूप में ही देता था। वह 'वेल मास्टर' 'वट मास्टर' कहता हुआ बरामदे में आ गया। मैं भी बरामदे में ही निकलकर उससे आसपास के होटलों के विषय में पूछने लगा। बटलर बतलाने लगा किस होटल में 'वैरी गुड फूड' मिलता है और किसमें 'डैम चीप फूड' मिलता है। उसी समय एक सोलह सत्रह वर्ष का लम्बा-सा नवयुवक मेरे पास आकर बोला, "आपको साहब बुला रहे हैं।"

"कौन साहब बुला रहे हैं ?" मैंने पूछा।

"कपूर साहब।"

"वे यहीं पर हैं ?" मैंने थोड़ा आश्चर्य के साथ पूछा।

"कमरे में ही हैं," वह बोला।

"काम पर नहीं गये ?"

"यहां कमरे में ही दफ्तर है।"

"वे दिन भर यहीं रहते हैं ?"

इससे पहले कि वह लड़का उत्तर देता, कपूर लुंगी लगाये और बनियान पहने अपने कमरे से बाहर निकल आया और वहीं खड़ा खड़ा बोला, "आओ बादशाहो, दास हर वक्त सेवा के लिए यहीं पर रहता है।"

उस समय न जाने क्यों मेरा ध्यान उसके फैले हुए निचले होंठ की ओर चला गया। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं उस होंठ की वजह से ही उस व्यक्ति की घनिष्टता से बचना चाहता हूं।

"मैं जरा खाना खा आऊं," मैंने कहा।

"खाने के लिए ही तो आपको बुला रहा हूं," कपूर लुंगी थोड़ी ऊंची उठाकर उसी ओर हो आता हुआ बोला, "आपका खाना उधर तैयार रखा है।"

'तकल्लुफ मत कीजिए, कपूर साहब...," मैंने कहना आरम्भ किया। परन्तु वह बीच में ही मेरी बाँह पकड़कर बोला, "तकल्लुफ तो आप कर रहे हैं। मुझे आप अपना भाई नहीं समझते? शौकत अन्दर चलकर प्लेटें लगाओ।"

शौकत उस लड़के का नाम,था जो मुझे बुलाने आया था। वह छरहरे बदन का सांवला नवयुवक था। उसके नक्श और स्वभाव दोनों में ही मृदुलता झलकती थी। उसके कपड़े इतने उजले थे कि मैं सहसा विश्वास नहीं कर सका कि वह कपूर का नौकर है।

अन्दर कमरे में पहुंचकर कपूर ने कहा, "आप भी हद कर रहे थे। यहां का खाना भला हम लोगों से खाया जा सकता है? जितने दिन मैं यहां हूँ, उतने दिन तो मैं आपको बाहर नहीं खाने दूंगा। बाद में जैसा खाना पड़ेगा, खा लीजियेगा।"

कपूर खाना स्टोव पर आप बनाता था। शौकत उसका नौकर नहीं था। वह एक बेकार नवयुवक था, जिसे उसने 'यूँ ही कुछ' देने का वादा करके 'यूँ ही थोड़ा सा काम' करने के लिए रख रखा था। वह उसके पास आठ दस दिन से आ रहा था। कपूर उससे वह सब काम लेता था, जो एक साधारण नौकर से लिए जा सकते हैं, परन्तु शौकत हर काम आँख झुकाये चुपचाप किये जाता था।

तरकारी में इतनी मिर्चें थीं कि खाते खाते मेरी आँखों में पानी आ गया। कपूर ने इसे लक्षित किया और बोला, "आपको शायद मिर्चें लग रही हैं। शाम से मिर्चें कम डाला करूंगा।"

"शाम को आप मेरे साथ बाहर खाइएगा," मैंने उस हर समय समय की मेहमानी से बचने के लिये कहा।

"आप फिर तकल्लुफ कर रहे हैं," वह बोला, "मैं आपको बाहर नहीं खाने दूंगा।"

उसी समय एक कुत्ता दुम हिलाता हुआ दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ। कपूर ने एक चपाती निकाल कर उसकी ओर फेंकते हुए कहा, "देखिये इसका भी इसमें हिस्सा है। दाने दाने पर मोहर होती है भाई साहब। न कोई का खाता है, न कोई किसी को खिलाता है।" और उसने कटोरे को मुँह से लगाकर तरकारी का रस पानी की तरह पिया और कटोरा रखकर तृप्ति के साथ डकार लिया।

मैंने इस बार शब्दों पर जोर देते हुए उस पर प्रकट करने की चेष्ठा की कि मैं उसका हर समय का मिलाप स्वीकार नहीं कर सकता, मैं शाम से बाहर ही खाऊंगा।

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ," वह बोला, "पर आप उस बात की चिन्ता मत कीजिये। आप आटा घी वगैरह थोड़ी थोड़ी चीजें अपनी मंगवा लीजिये। पकाता तो मैं हूँ ही। दोनों के लिये बन जाया करेगा। मिर्चें अब से मैं कम डाला करूंगा। सच कहता हूं, यहाँ का खाना हम लोग नहीं खा सकते। मेरे जाने के बाद तो खैर आपको खाना ही पड़ेगा।" फिर वह शौकत को लक्षित करके बोला, "अब तुम जाओ शौकत, दो बज रहे हैं। घर जाकर तुम्हें भी खाना-वाना खाना होगा। शाम को आते हुए बाबू जी के लिए कुछ सामान लेते आना। पैसे इनसे ले लो।"

मुझे उसका बढ़ा हुआ होठ और अनुरोध का ढंग अब भी अखर रहा था—वह अनुरोध क्या एक तरह का आदेश था, परन्तु उस परिस्थिति में शौकत को पैसे देने से मना कर देना भी सम्भव नहीं था।

मैंने यह सोचकर कि दो तीन रुपये खर्च होते हैं तो हो जायें, उसने बहुत अनुरोध किया तो दो एक बार उसके साथ खा भी लूंगा, जब से दस रुपये का नोट निकाल कर शौकत के हाथ में दे दिया। शौकत ने कपूर से पूछा कि क्या क्या सामान लाना होगा।

"पाँच सेर आटा काफी होगा," कपूर बोला, "आधा सेर घी ले आना। सब्जी जो ठीक समझो लेते आना। हाँ, अन्दर मसाले देख लो कौन कौन से नहीं हैं।" फिर वह मुझे लक्षित करने बोला, "नाश्ता आप किस चीज का करते हैं?"

उसके बढ़े हुए होंठ पर एक बहुत क्षीण मुस्कराहट मैंने लक्षित की, जिसे उसने होंठ पर जबान फेर कर दबा देने की चेष्टा की।

"आप क्या नाश्ता करते हैं?" मैंने मन ही मन अपने को थोड़ा कोसते हुए पूछा।

'सबेरे सबेरे कुछ बनाने का तरद्दुद तो होता नहीं," वह बोला, "मैं चाय के साथ दो टोस्ट और दो अण्डे खा लिया करता हूँ। आप भी यही नाश्ता कर लिया करें। यहाँ के इडली डोसे से तो अच्छा ही रहता है।" और वह शौकत से बोला, "देखो एक नौ आने वाली डबल रोटी, दो टिकिया मक्खन की और छः अण्डे भी लेते आना।"

शौकत चलने लगा तो कपूर ने फिर उसे एक सैकेंड ठहरने के लिए कहा और मुझसे पूछा, "यहाँ के केले आपने खाये कि नहीं?"

"यहां के केले कुछ खास होते हैं क्या?" मैंने "नहीं" कहने से बचने के लिए पूछा।

"खास?" कपूर बोला, "जितनी फूड वैल्यू यहाँ के केले में होती है, उतनी और कहीं के किसी फल में नहीं होती। शौकत एक दर्जन बड़े वाले केले भी लाना, बाबू जी को आज उनका भी स्वाद चखायें।"

मेरा आज तक कई ऐसे व्यक्तियों से पाला पड़ा है जिनके साथ व्यवहार में मुझे बहुत कठिनाई का अनुभव होता है। परन्तु कपूर ऐसे व्यक्तियों में सबसे आगे था। शाम को उसको कमरे में खाना नहीं बनाया और कहा कि मैंने जो उसे शाम को अपने साथ बाहर चलकर खाने का निमन्त्रण दिया था, वह उसी के खयाल में बैठा रहा है। मैंने उसे साथ ले जाकर बाहर खाना खिलाया। दूसरे दिन वह दो बजे तक कहीं गया रहा और आकर उसने नाराजगी प्रकट की कि मैं खाना बाहर जाकर क्यों खा आया, उसके आने की मैंने प्रतीक्षा क्यों नहीं की थी। उस रात को फिर उसने खाना नहीं बनाया कि उसे भूख नहीं थी, क्योंकि दोपहर का खाना दो बजे के बाद बना था, और उसने यह सोचकर कि रात को कौन तरद्दुद करेगा, दोनों समय का खाना एक साथ ही खा लिया था। परन्तु जब मैं खाना खाने निकला तो वह 'घूमने के उद्देश्य से' मेरे साथ चल पड़ा और होटल में बैठ कर 'केवल साथ देने के लिए' दो प्लेट बिरयानी (पुलाव) खा गया। लौटते हुए मैं ब्लेड वगैरह खरीदने लगा तो उसे भी कुछ चीजें खरीदनी याद आ गईं। चीजें लेकर उसे याद आया कि वह पैसे लाना तो भूल ही गया, क्योंकि वह तो केवल घूमने के खयाल से आया था और दुकानदार से उसने कह दिया कि वह सारे पैसे साथ ही काट ले।

होटल पहुँचकर उसने बड़े आग्रह के साथ कहा कि मैं अपनी चीजें रखकर एक मिनिट के लिए उसके कमरे में आकर उसकी बात सुन जाऊं। हालाँकि मैं उसके जीवन के खोखले पन को समझ रहा था, फिर भी मेरे लिए उसे बर्दाश्त करना असंभव होता जा रहा था। मैं उसके कमरे में नहीं गया पर दस मिनिट बाद वह मेरे कमरे में आ गया।

"देखिये, मैं इस समय कुछ पढ़ने लगा हूं," मैंने उसे देखकर थोड़ा रूखे स्वर में कहा।

"पढ़िये,"—वह बैठते हुए बोला, "मैं तो सिर्फ एक मिनिट के लिए बात करने आया हूं।"

"कहिये," मैंने खड़े खड़े कहा।

"आप बैठ जायें तो बात करूं," वह बोला।

"मैं बैठ जाऊंगा, आप बात करें," मेरा स्वर थोड़ा चिढ़ा हुआ था।

"आप मुझसे नाराज हैं?" उसने ऐसा मुंह बनाकर कहा, जैसे उसके हृदय को गहरी चोट पहुँची हो।

मैंने अब अपने स्वर को संयत करके कहा, "मैंने आप से कोई ऐसी बात तो नहीं कही, जिससे लगे कि मैं नाराज हूं।"

"तो मैंने अच्छा किया जो पूछ लिया," वह बोला, "मेरे दिल का वहम निकल गया। मैं सोच रहा था कि मैं तो भाई साहब की इतनी इज्जत करता हूँ, इन्हें अपने सबसे अच्छे दोस्त की तरह मानता हूँ। फिर इनके चेहरे से क्यों लग रहा है, जैसे ये मुझसे नाराज हों। चलो मेरी तसल्ली हो गई। मेरे दिल का वहम निकल गया।"

फिर वह उठता हुआ बोला, "मैं तो भाई साहब इन्सानियत के नाते किसी के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता हूं। आप तो फिर अपने पंजाब के हैं। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे हर वक्त अपना दास समझें, और सेवा का मौका देते रहें।"

एक बार दहलीज पार करके वह फिर लौट आया और बोला, "मैंने कहा मुझे आपसे थोड़ा सा निजी काम है। जिस वक्त आप खाली हों, उस वक्त आ जाऊंगा। आप कितनी देर पढ़ेंगे?"

"जितनी देर नींद नहीं आयेगी, पढ़ता रहूंगा," मैंने कहा।

"तो सोने से पहले मुझे आवाज दे लीजियेगा," वह चलता हुआ बोला, "वैसे मैं आप भी एक बार आकर देख जाऊंगा।"

उस रात तो उसे अवसर नहीं मिला, क्योंकि जिस समय वह लौट कर आया, मेरे कमरे की बत्ती बुझ चुकी थी। दूसरे दिन सवेरे जिस समय मैं अखबार देख रहा था, वह फिर आ गया और बोला, "खाली हैं?"

मैंने कुछ न कहकर केवल अखबार हटाकर रख दिया।

वह बैठ गया और जेब से एक चिट्ठी निकालता हुआ बोला, "एक चिट्ठी का जवाब आपसे लिखवाना चाहता हूं।"

मेरा एक तो मन हुआ कि उसे कमरे से बाहर निकाल दूं और दूसरा मन हुआ कि जोर से ठहाका लगाऊं। वह इस तरह कबूतर की सी दृष्टि से मेरी ओर देख रहा था कि मैं उससे चले जाने के लिए नहीं कह सका। मैंने उसे समझाने की चेष्टा की कि मैं चिट्ठियाँ लिखने की कला में निपुण नहीं हूँ। इसके उत्तर में उसने कहा कि वह एक विशेष चिट्ठी है, जो उसकी प्रेमिका रूबी ने उसे सिकन्दराबाद से लिखी है। क्योंकि वह मुझे अपना सबसे विश्वस्त मित्र समझता है इसलिए मुझे कम से कम इतना परामर्श उसे अवश्य देना चाहिए कि वह किस तरह उत्तर लिखे कि उसमें सारी बात आ जाय।

और वह सारी बात यह थी कि उसके रूबी की ओर चौदह रुपये निकलते थे। वह ऐसा पत्र लिखना चाहता था, जिसे पढ़ कर रूबी पर उसके प्रेम का प्रभाव भी पड़े और वह उसके रुपये भी दे। रूबी पहले उसी होटल में दो कमरे छोड़कर अपने भाई और भावज के साथ रहती थी। कपूर का विश्वास था कि वह चाहता तो भावज और ननद दोनों से ही प्रेम कर सकता था,पर उसने अपने को गिराया नहीं और केवल रूबी को ही प्रेम के लिए चुना। वह उससे भी दूर से ही प्रेम करना

चाहता था; पर वह कुछ इस तरह से उस पर मरने लगी थी कि उसके लिए अपने आपको दूर रख सकना असम्भव हो गया। एक रात (जब कि भूल से पीछे का दरवाजा उससे खुला रह गया था) वह अपने आप उसके कमरे में चली आई और उसे, न चाहते हुए भी, (क्योंकि वर्षा होने लगी थी) अपने को रूबी की इच्छा पर छोड़ देना पड़ा। उसके बाद जितने दिन रूबी वहाँ रही, दरवाजा खुला रहने की भूल दोहराई जाती रही।

रूबी बीच बीच में उससे रुपया रुपया दो दो रुपये उधार लेती रहती थी और उसके सिकन्दराबाद जाने तक कपूर की डायरी में उसके नाम चौदह रुपये हो गये थे। वह जाती हुई कह गई थी कि सिकंदराबाद पहुँचते ही अपने एकाउन्ट में से निकलवा कर भेज देगी, परन्तु दो महीने हो गये थे और उसने रुपये भेजना तो दूर, अपने किसी पत्र में उनके सम्बन्ध में लिखा भी नहीं था। महीना पहले उसने लिखा था कि वह उसके लिये दो बेडकवर काढ़कर भेज रही है, पर बेडकवर भी आज तक नहीं आये थे। अब कपूर चाहता था कि ऐसा पत्र लिखा जाय, जिसमें रुपयों की बात भी आ जाय और रूबी को यह महसूस भी न हो कि उसने यह बात लिखी है, क्योंकि वह आगे के लिए भी उससे प्रेम-सम्बन्ध बनाये रखना चाहता।

"अब बताइये, यह किस तरह से लिखा जाय!" उसने अन्त में कहा।

मैंने उसे फिर बतलाया कि मैं इस मामले में कोई परामर्श नहीं दे सकता; वह अपनी प्रेमिका को जानता है, इसलिए वही ठीक समझ सकता है कि उसे क्या और किस तरह से लिखना चाहिए। इस पर कपूर ने जरा दबे हुए स्वर में कहा कि मैं उसकी प्रेमिका के विषय में जरा धीमे स्वर में बात करूँ क्योंकि वहां के लोग उतने खुले विचारों के

नहीं हैं और ऐसे लोगों के बीच आदमी को अपनी शराफत बहुत सँभालकर रखनी पड़ती है ! अब मैंने उससे कहा कि और बात फिर किसी समय की जाय, क्योंकि मैं कुछ काम करना चाहता हूं। तो वह उठता हुआ बोला, हाँ हाँ, काम कीजिए। वैसे आप भी सोचें। इसी वक्त नहीं, शाम तक सोच रखें। शाम को बैठकर ड्राफ़्ट बना लेंगे। मैं कल तक चिट्ठी डाल देना चाहता हूं, क्योंकि उसे अपना लुधियाने का भी पता देना है।"

और फिर मुझसे यह अनुरोध करके मुझे बाहर का कोई काम हो तो शौक़त से करा लिया करूँ, तकल्लुफ न करूं, वह अपने कमरे में चला गया।

उस शाम से मैंने खाने का प्रबन्ध पास के एक होटल में कर लिया और नाश्ता कमरे में ही तैयार करने के लिए आवश्यक सामान खरीद लाया। उसे जब इसका पता चला तो उसने पहले तो आकर यह शिकायत की कि मैं क्यों नहीं उसकी चीजों को अपनी चीज़ें समझता और यू ही इतने पैसे बर्बाद कर आया हूँ। उसके बाद दूसरे दिन से वह मेरे कमरे में आ आकर ऐसे ऐसे करतब करने लगा, "आपकी अलमारी में डबल रोटी रखी है, जरा मक्खन का डिब्बा तो निकालिए तो तीन स्लाइस ही काटकर खा डालूं— अब रोटी कौन बनाये।" या मेरी दाढ़ में दर्द है, कुछ खाया नहीं जायगा—खयाल है थोड़ा सा दूध पी लूं तो ठीक रहेगा। मैंने तो मंगवाया नहीं, आपके में से ले रहा हूँ, आप एक स्लाइस ज़्यादा खा लीजिएगा।" या "सेब आये हैं सेब ? ज़रा चखकर तो देखें।" या फिर, "शौक़त आपके बिस्कुट लाया था और उधर रखकर पान लाने चला गया था—दो दोस्त बैठे थे, उन्होंने चाय के साथ ले लिये। आपके लिये शौकत से और लाने को कह दिया है।" और ये और भी उसने शौकत से उन्हीं पैसों में से लाने को कह दिया था—जो मैंने उसे दे रखे थे। इसके अतिरिक्त मेरे

कमरे में आ बैठने के उसके पास सौ बहाने थे। "इतनी इतनी देर आपका अकेले दिल कैसे लग जाता है।" या "पंजाब के शहरों में शाम को कितनी रौनक होती है, पर यहाँ देखिये न ...... ।" या "लाइये, दो चार सफ़े मैं साथ लगकर लिखा दूं।"

मैंने निश्चय किया कि उसके कमरे में एक चिट लिखकर भेज दूंगा कि वह मेरे पास न आया करे।

जिस होटल में मैं खाना खाने जाता था, उसी होटल में खाना खाने धनंजय नाम का एक युवक भी आया करता था, जिसे दो एक बार मैंने कपूर के कमरे में देखा थे। उस शाम को हम होटल से खाना खाकर इकट्ठे बाहर निकले। मेरा मन समुद्रतट पर जाकर टहलने का था और वह भी उसी ओर जा रहा था, अतः हम दोनों साथ साथ हो लिये। समुद्रतट पर टहलते हुए बातों ही बातों में धनंजय ने पूछा कि कपूर कब जा रहा है।

"कह नहीं सकता," मैंने कहा, "वह हर रोज यही कहता है कि चार पाँच रोज तक जा रहा हूँ।"

धनंजय कुछ देर चुपचाप चलता रहा। फिर उसने हिचकिचाते हुए कहा कि उसके कपूर की ओर कुछ रुपये निकलते हैं।

"कितने रुपये हैं?" मैंने पूछा।

"पचास।"

"क्या कहता है वह?"

"कहता है लुधियाने जाते ही भेज दूंगा।"

उसने बतलाया कि जिन दिनों रूबी कपूर के पास आया करती थी उन्हीं दिनों कपूर ने उससे वे रुपये उधार लिये थे। कपूर ने उससे कहा था कि रूबी उससे रुपये माँग रही है, उसके अपने रुपये आठ दस

दिन में व्यापारियों से मिलने वाले हैं, यह उसके प्रेम का सवाल है और वही उसका एक मात्र दोस्त है जिससे वह माँग सकता है और धनंजय ने उसे रुपये दे दिये थे। (उसकी बात के ढंग से लगता था कि कपूर ने उसकी रूबी से मित्रता कराने का भी वादा किया था, परन्तु वह बात पूरी नहीं हो सकी।) कपूर ने धनंजय को यह भी बता रखा था कि मैं उसका पुराना मित्र हूं और मेरे वहाँ रहते, उसे अपने रुपये की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। अब मैंने धनंजय को सारी वस्तुस्थिति बताई तो उसका चेहरा उतर गया और उसकी चाल भारी हो गई। वह बदले हुए स्वर में बोला,"मैं रुपये की पर्वाह नहीं करता मगर एक भले आदमी को ऐसा करना नहीं चाहिए।"

मैं उसकी इस बात पर मन ही मन मुस्कराया और मुझे उसके साथ हर्दिक सहानुभूति हुई।

समुद्रतट से लौटकर मैंने बटलर के हाथ कपूर के पास एक चिट भेज दी कि वह मेरे कमरे में न आया करे। थोड़ी देर बाद शौकत आया कि साहब उधर बुला रहे हैं। मैं नहीं गया, तो कपूर आप आ गया। दरवाजे के बाहर रुककर बोला, "भाई साहब आपने लिखा है कि मैं आपके कमरे में न आया करूं। पर आपको मेरे कमरे में आने में तो कोई एतराज नहीं है न ?"

मैंने संक्षेप में उसे बता दिया कि मैं उसके साथ अपने परिचय को वहीं समाप्त कर देना चाहता हूं, उस विषय में अधिक बात करने की आवश्यकता नहीं।

"पर क्यों ?" कहता हुआ वह अन्दर आ गया, "इसका मतलब है कि मेरा उस दिन का अन्दाज़ा ठीक था। आप किसी वजह से मुझसे नाराज हैं। आप जब तक वजह नहीं बतायेंगे मैं यहाँ से नहीं जाऊंगा।"

मैंने बिना उसकी ओर देखे एक पुस्तक खोलकर सामने रख ली, और उस पर आँखें इस तरह फिराने लगा जैसे पढ़ रहा होऊं। वह कुछ देर चुपचाप खड़ा देखता रहा। फिर बोला, "कहानियों की किताब है ?"

मैं चुप रहा।

"और कोई अच्छी सी कहानियों की किताब है ?"

मैं फिर चुप रहा।

"अच्छा सवेरे तक अपनी नाराज़गी दूर कर लीजिए, ऐसे मेरा दिल नहीं लगता," कहता हुआ वह एक दृष्टि कमरे में चारों ओर डालकर धीरे धीरे बाहर की ओर चला। फिर जैसे कुछ याद आ गया गया हो, इस तरह रुककर जेब में हाथ डालकर कुछ टटोलता हुआ बोला, "यह मैं लाया था। अपने लिए ले रहा था तो सोचा भाई साहब के लिए भी एक लेता चलूं, जरूरत तो पड़ती ही रहती है," और उसने जेब से एक माचिस की डिबिया निकालकर मेरे पास मेज पर रख दी।

"इसे ले जाइए, मुझे इसकी जरूरत नहीं है," मैंने कहा।

"शुक्र है बोले तो सही !" कहता हुआ वह फिर वापस आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। उसकी वह बात सुनकर मेरे लिए मुस्कराहट रोकना कठिन हो गया।

"शुक्र है, मुस्कराये तो सही।" वह दोनों हाथों को कुछ फेंकने के ढंग से हवा में झटककर बोला, "उस तरह नाराज रहते तो मुझे सारी रात नींद न आती। यह डिबिया तो मैं इस खयाल से ले आया था कि जरूरत पड़ती रहती है। इधर जरूरत नहीं है तो उधर काम में आ जायेगी" कहते हुए उसने डिबिया उठा ली और जाता हुआ यह आदेश दे गया कि अब भी मेरे दिल में कोई बात

हो तो मैं उसे दिल से निकाल दूं—उसका दिल मेरी तरफ से बिलकुल साफ है।

उसके जाने के दिन तक यही हाल रहा। मैं उससे कोई बात नहीं करना चाहता था, पर वह बीच बीच में इसी तरह आकर मेरे पास बैठ जाया करता और दो चार बातें करके, और और नहीं तो थोड़ी सी चीनी ही फाँककर चला जाया करता। कभी कभी उसका वह सिलसिला भी चल जाता, "अच्छा केले की खशबू आ रही है, केले आये हैं।"

आखिर उसका जाने का दिन आ गया। मैं दोपहर को खाना खाकर आया तो उसका सामान बंधा रखा था। धनंजय शौकत से सामान ताँगे में रखवा रहा था। कपूर मुझे देखते ही मेरे पास आ गया। बोला, "मैं इन्तजार कर रहा हूं कि भाई साहब आयें तो साथ लेकर स्टेशन पर जाऊं।"

मैंने कमरा खोला और अन्दर जाते हुए कहा कि धूप बहुत है इसलिए मैं उसके साथ स्टेशन तक नहीं चल सकता। वह भी अन्दर आ गया और मेज के पास खड़ा होकर बोला, "नहीं तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं," और मेज पर पड़ी हुई पुस्तक उठाकर, उसे दोनों ओर से देखकर फिर बोला, "यह किताब मैं रास्ते में पढ़ने के लिये लिए जा रहा हूँ, दिल्ली से बुकपोस्ट कराके भेज दूंगा।"

और वह चल पड़ा। मैंने बाहर निकलकर उससे कहा कि मैं भी थोड़े दिनों तक वहाँ से जा रहा हूँ, अतः वह पुस्तक मैं उसे नहीं दे सकता। धनंजय और शौकत तांगे में पिछली सीट पर बैठ गये थे। वह जाकर अगली सीट पर बैठता हुआ बोला, "आप जरा फिक्र न करें। मैं रास्ते में बंगलोर से ही भेज दूंगा।"

ताँगे में बैठकर उसने हाथ जोड़ दिये और कहा, "दास की को

भूल-चूक हो तो माफ कीजियेगा। कभी कभी याद कर लिया कीजियेगा।"

और ताँगा चल दिया।

शाम को फिर मुझे धनंजय होटल में मिल गया और हम फिर समुद्रतट पर टहलने निकल गये। वहाँ रेत पर बैठकर उंगलियों से रेत में लकीरें खींचते हुए धनंजय ने कहा, "पता नहीं जल्दी भेजता है कि नहीं? कह तो गया है कि जल्दी भेज देगा। मैं इसीलिए उसे छोड़ने भी गया था कि मेरी तरफ से उसके दिल में कोई ख्याल न रहे। मैंने उससे आप ही कहा कि दस बीस दिन में, जब भी वह रुपये आराम से भेज सके, भेज दे। इस तरह मैंने सोचा, वह भेज देगा। नहीं तो, क्या पता?"

मैं कुहनियां रेत पर टिकाकर लेट गया और लहरों का तमाशा देखने लगा। धनंजय स्थिर दृष्टि से सांध्य आकाश को देखता हुआ चुप बैठा रहा।

मलबार

मलबार की भूमि उतनी ही सुन्दर है जितना शब्द मलबार लाल जमीन घनी हरियाली और बीच बीच में नारियल के सूखे पत्तों से बनाई गई घरों की छतें। मैंने कनानोर में रहकर और आसपास घूमकर देखा कि सारा मलबार ही एक बहुत बड़ा नारियल का उद्यान है, जिसमें बीच बीच में सुपारी, काजू, पान आदि जैसे दृश्य सौन्दर्य के लिए ही लगा दिये गये हैं और जिसके विस्तार में छोटी छोटी नदियों या बैक वाटर्ज का पानी भी उसी उद्देश्य से फैला दिया गया है। इस तरह के सौन्दर्य में घिरकर रहना भी अपने आप में एक चाह हो सकती है—परन्तु वहां गरमी बहुत पड़ती है। एक वहीं के व्यक्ति ने कुछ परिहास के साथ मुझसे कहा कि मलबार में साल में नौ महीने गरमी पड़ती है, और तीन महीने बहुत गरमी पड़ती है।

मलबार की उपजाऊ जमीन एक तरह से कच्चा सोना उगाती है। वहां की उपज को देखते हुए वहां के निवासियों का जीवन-स्वर काफी अच्छा होना चाहिए, पर ऐसा नहीं है। वहां भी वैसे ही चटाइयों के घर उसी जीर्ण अवस्था में जगह जगह दिखाई दे जाते हैं जैसे मैंने गोआ में देखे थे। प्रकृति वहां के इन्सान को जैसा बनाना चाहती है, वह वैसा नहीं बन पाता। प्रकृति की भरपूर देन के बीच उसे अभावपूर्ण जीवन-व्यतीत करने के लिए विवश होना पड़ता है। उसकी इस विवशता का कारण वहाँ भी महीन धोती बाँधे, रेशमी कमीज में सोने के बटन लगाये, पान चबाता हुआ, बाजारों में घूमता दिखाई दे जाता है। कनानोर में उमायल फैक्टरी के पास के मैदान में अक्सर मजदूरों की मीटिंगें हुआ करती थीं। मैं भाषण कर्त्ताओं की भाषा नहीं समझ पाता था, परन्तु उनकी ध्वनि से उनके अर्थ का कुछ वैसे ही अनुमान लगाया जा सकता था, जैसे धुएं को देखकर आग का अनुमान लगाया जा सकता है। उन दिनों किसी फैक्टरी में हड़ताल चल रही थी। समस्या वही थी जो हुआ करती है। बाजार गिरने के कारण मालिक मजदूरों के वेतन घटाना चाहते थे, या फैक्टरी बन्द कर देने की धमकी दे रहे थे। मजदूर अपने सिक्योरिटी आफ् सर्विस के अधिकार के लिए लड़ रहे थे। शाम को जुलूस निकलता, रात को मीटिंग होती और रात की हवा में मलमाम् की मूर्धन्य ध्वनियों की तरह गूंजती हुई सुनाई दिया करतीं। मैं उन ध्वनियों को सुनने के लिए ही खामखाह वहाँ रुक जाया करता था।

मलबार में गरीबी बहुत है, मगर उसके बावजूद लोग बहुत साफ रहते हैं। वहाँ का बहुत निम्न आयका व्यक्ति भी धुले हुए वस्त्र पहने ही दिखाई देता है। वह नंगे बदन भले ही रहे, पर मैला नहीं रहता। शायद यह उस खुले प्राकृतिक वातावरण का ही प्रभाव है जिसमें वह पलता है।

वहां के लोगों को देखकर मैंने कई बार सोचा कि कितनी साधारण चीजें, मनुष्य के निर्माण में कितना बड़ा हाथ रखती हैं। समुद्रतट की हवा, मछली, खोपड़े का तेल और उबले हुए चावल इन्हीं उपादानों को लेकर प्रकृति मलबार में जिस शरीर-सौन्दर्य की रचना करती है, उसे गठन तराश और उठान की दृष्टि से आदर्श कहा जा सकता है। पतली त्वचा, सुन्दर आँखें और अजन्ता की मूर्त्तियों के से होंठ ये विशेषताएं भी वहाँ विशेषताएं नहीं शरीर-सौन्दर्य की सामान्यताएं हैं। बहुत से चेहरों पर अभाव की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। यह स्पष्ट लगता है कि प्रकृति के उस सुन्दर निर्माण में कोई मैली चीज हस्तक्षेप कर रही है। मलबार के पक्षी भी बहुत सुन्दर हैं—परंघ, (चील) कोच्छ, (सफेद कबूतर) और कडल काक (समुद्र-कपोत) सभी, और क्यों कि उनके शरीर के निर्माण और विकास में किसी का हस्तक्षेप नहीं, इसलिए वे बहुत स्वस्थ भी हैं। वे जमीन से और चारों ओर के वातावरण से जितना कुछ ग्रहण कर सकते हैं, पूरी तरह करते हैं, जो कि वहाँ के मनुष्य नहीं कर पाते।

सांस्कृतिक दृष्टि से मलबार-मलयालम् भाषी केरल प्रदेश का अंग है। केरल एक सांस्कृतिक इकाई है। उत्तर भारत में जिस उत्साह के साथ होली और दीवाली मनाई जाती है, वहां उसी उत्साह के साथ ओणम् और विशु ये दो त्यौहार मनाये जाते हैं। ओणम् अगस्त सितंबर में पड़ता है और वर्ष का प्रमुख त्यौहार माना जाता। इस त्यौहार के साथ राजा महाबली की कथा सम्बद्ध है। (उत्तर भारत में इन्हीं महाबली को हम राजा बली के रूप में जानते हैं, जिनसे पौराणिक कथाओं के अनुसार वामन ने तीन पैर जमीन माँगी थी और अंग्रेज बनियों की तरह सारी जमीन पर ही पैर फैलाकर उन्हें पाताल में भेज दिया था।) ओणम् की कथा इस प्रकार है—राजा महाबली केरल में राज्य करते थे। उनके राज्य में बहुत समृद्धि थी और प्रजा बहुत सुखी

रहती थी। वामन ने राजा महाबली को केरल छोड़कर पाताल जाने के लिए विवश कर दिया। (यह शायद उत्तर भारतीय शक्ति प्रसार का रूपक है। केरल में महाबली को वहां का आदर्श राजा माना जाता है, जबकि उत्तर भारत के पुराण उन्हें दैत्यों का अधिपति बताते हैं।) क्योंकि महाबली बहुत लोकप्रिय राजा थे और उस प्रदेश को उन्होंने ही समृद्ध बनाया था, इसलिए उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे वर्ष में एक बार पाताल से आकर अपनी केरल की प्रजा को आशीर्वाद दिया करें, जिससे उस प्रदेश की समृद्धि उसी तरह बनी रहे। ओणम् का दिन राजा महाबली के पुनरागमन का दिन समझा जाता है।

वैसे ओणम् फसल काटने के समय का त्यौहार है। हरसाल ओणम् के दिन महाबली (जो जमीन को जोतता है और उस समृद्धि का स्वामी है) यह देखता है कि उसकी जमीन अढ़ाई पैर वाले वामन ने (जो अब सोने के बटन लगाने लगा है) कब्जे में कर रखी है। अब महाबली महसूस कर रहा है कि जमीन को वामन के हाथ से ले लेने का समय आ गया है।

ओणम् मनाने के लिए लोग नौ दिन तक घरों के आगे फूलों से तरह तरह की सजावट करते हैं। ओणम् के दिन घर के आँगन में महाबली की मिट्टी की मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा की जाती है। पप्पड़म् (पापड़) और केले से बनाये गये खाद्य पदार्थ ओणम् के दिन विशेष पकवान होते हैं।

विशु दूसरा त्यौहार है जो अप्रैल मई में पड़ता है। यह मलयालम् संवत्सर के आरम्भ के दिन मेदम् मास की पहली तारीख को मनाया जाता है। पहली रात को घर के बड़े कमरे में खनी (विभिन्न व्यंजन जिनमें उबला हुआ चावल नहीं रहता) रखकर दिये जला दिये जाते

हैं। सवेरे घर के लोग उठते ही खनी के दर्शन कर पूजा आदि करते हैं।

उत्तर भारत के त्यौहारों में से वहाँ महाशिवरात्री मनाई जाती है। और यह भी वहाँ के प्रमुख त्यौहारों में से है। दीवाली एक वर्ग में ही मनाई जाती है। होली और वसंत वहां पर नहीं मनाये जाते।

बिखरे हुए केन्द्र

मैं कनानोर से कालीकट जाते हुए रास्ते में तेल्लीचरी के स्टेशन पर उतर गया, यह एक सनक ही थी। कनानोर से चल देने का कार्य-क्रम भी अचानक ही बन गया। मुझे वहाँ रहते हुए सत्रह दिन ही हुए थे। उस दिन सहसा यह बात मन में समा गई कि मैं बहुत दिनों से उस स्थान पर रहे जा रहा हूं, रास्ते में और जगहें कनानोर से भी कहीं अच्छी हो सकती हैं, मुझे आगे चलना तो चाहिए, और मैंने तुरन्त चल देने का निश्चय कर लिया। कनानोर के बाद दूसरा समुद्र तट का नगर कालीकट है और वहीं का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। एक गति का लोभ था और दूसरे कुछ नया देखके का लोभ, जिसमें मुझे अपना आप बहुत ताजा महसूस होने लगा। परन्तु रास्ते में यह विचार उठा कि एक नगर से दूसरे नगर तक ही न जाकर यदि रास्ते में जहाँ कहीं भी उतर जाउं तो कैसा रहे ? और यह विचार मुझे उस समय इतना अच्छा लगा कि जब गाड़ी तेल्लीचरी के स्टेशन पर रुकी तो मैंने अपना सामान गाड़ी से उतार लिया। डेढ़ दो बजे का समय था। गाड़ी चली गई, तो प्लेट फार्म पर और पटरियों पर फैली हुई खुली धूप को देखकर मुझे इस तरह गाड़ी से उतर पड़ने के लिए खेद होने लगा। फिर पूछने पर यह पता चला कि उस स्टेशन पर क्लोक रूम

नहीं है, जिसमें सामान रखकर मैं बाहर घूमने जा सकूं। अन्त में सामान एक पोर्टर के सुपुर्द करके, हाथ जेबों में डाले, मैं स्टेशन से बाहर निकला।

बाहर चारों ओर खुली धूप फैली हुई थी। एक रिक्शा वाले ने मेरे पास आकर पूछा, "जगन्नाथ भेट ?"

मैंने उससे पूछा कि जगन्नाथ भेट कौन सी जगह है ?

"वर रुपिया आर आणा", वह बोला।

मैंने कनानोर में मलयालम् की एक से दस तक की गिनती सीख ली थी। जो उसने कहा उसका मतलब था 'एक रुपया छः आना !'

मैंने शब्दों के साथ हाथ के संकेत मिलाकर पुनः उससे पूछा कि जगन्नाथ भेट चीज क्या है ?

"वर रुपिया नाल आणा।" वह बोला। इसका मतलब था 'एक रुपया चार आना'।

'चलो" मैंने बैठते हुए कहा और अपनी प्रयोग बुद्धि पर मुस्कराया जिसकी वजह से मैं गाड़ी से उतर गया था।

वह मुझे सँकरे रास्तों में से होता हुआ ले चला। इन रास्तों के दोनों ओर जमीन छः छः आठ आठ फुट ऊंची उठी हुई थी, और दोनों ओर के घर उसी ऊंचाई पर बने हुए थे। इस तरह रास्ता दो दीवारों के बीच से हो कर जा रहा रहा था। उस धूप में उन रास्तों से गुजरते हुए थोड़ी ठण्डक महसूस होती रही। अन्त में एक जगह पहुँचकर जहाँ एक ओर तो दुकानें थीं, और दूसरी ओर खुला मैदान, रिक्शा वाले ने रिक्शा रोक दिया। मैदान की ओर संकेत करते हुए उसने एक पगडंडी दिखाई और इशारे से कहा कि मैं उस पगडण्डी से चला जाऊँ।

"मगर वह पगडण्डी जाती कहाँ है ?" मैंने भी इशारों द्वारा अपना मतलब प्रकट करने की चेष्टा करते हुए पूछा।

उसने जिस भाव से कुछ कहा उससे लगा कि वह कह रहा है कि मैं होकर लौट आऊं, वह वहां पर मेरी प्रतीक्षा करेगा। अन्त में जब उसने देखा कि मैं उसकी बात नहीं समझ पा रहा और उसे मेरी बात समझ में नहीं आती तो वह रिक्शा छोड़ कर और मुझे संकेत से पीछे आने को कहकर चल पड़ा।

पगडण्डी पर कुछ दूर जाकर हम जहाँ पहुँचे, वह छोटा सा परम शिवं का मन्दिर था। मैंने पन्द्रह बीस मिनट उस मन्दिर में बिताये। पुजारी यह जान कर कि मैं उत्तर भारत का रहने वाला हूं, आग्रह के साथ मन्दिर दिखाने लगा। उसने यह अनुरोध किया कि मैं कमीज और बनियाइन उतार कर मन्दिर को अन्दर से भी देखूं। अन्दर घुमाकर उसने मन्दिर के संस्थापक किन्हीं स्वामी जी की मूर्ति दिखाई जो छः हजार रुपये में इटली से बन कर आई थी। अन्त में मेरे चलने से पहले उसने ताजा नारियल का रस पिलाया और मेरी प्रशंसा की कि मैं उस मन्दिर के महत्व को समझकर वहां आया हूं और कि ऐसा ही एक बहुत दूर का दर्शनार्थी कुछ वर्ष पहले भी वहाँ आया था।

मन्दिर से लौटते हुए मेरी दृष्टि पगडण्डी के एक ओर मिट्टी खोदते और ढोते हुए मजदूरों के एक समूह पर पड़ी। पुरुष नंगे बदन तहमद ऊपर को लपेटे मिट्टी खोदकर तसलों में भर रहे थे। स्त्रियां जो अधिकतर तहमद के साथ ब्लाउज पहने थीं, तसले सिरों पर उठा कर मिट्टी एक ओर को ले जाकर फेंक रही थीं। काम के साथ साथ वे आपस में चुहल भी कर रहे थे। मैं पगडण्डी पर रुककर काम देखने लगा।

एक युवक ने मुझे लक्षित कर मुस्कराते हुए मलयालम् में कोई प्रश्न पूछा।

रिक्शा वाले ने उसे उत्तर दिया, "मलयाली इल्ला।" इल्ला का अर्थ मैं जानता था 'नहीं'। उसने शायद उस युवक से कहा था कि मैं मलयालम भाषी नहीं हूं।

इस पर उन सब का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हो गया। कुछ एक ने एक दूसरे से कुछ कहा और एक और युवक ने मुझे लक्षित करके फिर एक प्रश्न पूछा।

"मालयाली इल्ला!" इस बार मैंने कहा। मेरे मलयालम बोलने पर वे सब हंस दड़े। मैंने मुस्कराते हुए हाथ हिलाया और चल पड़ा। उनमें से भी कुछ एक ने उत्तर में हाथ हिलाये। अब रिक्शावाला मुझे मलयालम में उनके विषय में कुछ बताने लगा। दो एक मिनिट बोलकर उसने प्रश्नात्मक ध्वनि के साथ बात समाप्त की और प्रश्नात्मक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने सिर हिलाया कि मैं कुछ नहीं समझा। उसने निराश भाव से हाथ हवा में झटके और हम दोनों खिलखिला कर हँस दिये।

स्टेशन के पास रिक्शा से उतर कर मैं चाय पीने के लिए मुस्लिम होटल में चला गया। रिक्शा वाला मेरा मेहमान था। क्योंकि उसी ने उस जगह की सिफारिश की थी। एक विशेष ढंग से भाप देकर और कपड़े की बनी मैली सी चलनी में छानकर कुछ नये ही ढंग से बनाई गई चाय जब एक मैली-सी प्याली में मेरे सामने आई तो पहले मेरा पीने को मन नहीं हुआ। पर एक घूंट पीकर मुझे उस चाय की गंध बहुत अच्छी लगी उस समय तो मुझे लगा कि उतनी अच्छी चाय मैं पहली बार पी रहा हूं। चुस्कियाँ लेकर चाय पीते हुए मैं एक यात्री होने की पूरी अनुभूति के साथ आस पास के वातारण पर दृष्टि डालने लगा।

होटल की बेंचें भी चाय की प्यालियों से कम मैली नहीं थीं। खम्भा‍, कांउटर की लकड़ी, दरवाजों की जाली हर चीज पर मैल जमी

हुई थी। होटल में दो छोटे छोटे कमरे थे। एक आगे का जिसमें बैठकर मैं चाय पी रहा था। उस कमरे में से पिछले कमरे में जाने के लिये एक दरवाजा था। उस कमरे में भी एक मेज और कुछ बेंचें रखी हुई थीं। वह कमरा काफी अंधेरा था। उस समय कुछ नवयुवक, बेतकुल्लुफी से उस कमरे में बैठे शायद साहित्यिक बातचीत कर रहे थे, क्योंकि मेज पर कुछ लिखे हुए कागज रखे थे और वे बीच बीच में 'इनसाइट' 'वेल्यूज' 'लाइफ बैक ग्राउन्ड' आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। उनके आगे जो चाय की प्यालियाँ रखीं थीं, वे कब की खाली हो चुकी थीं। परन्तु बातचीत की गरमी में कभी कभी किसी का हाथ प्याली को उठा कर होठों तक ले जाता, और चुस्की लेने की प्रक्रिया में उसे पता चलता कि प्याली में चाय नहीं है, और वह निराशा का झटका सा महसूस कर उसे रख देता। दरवाजे की जाली में से सामने सड़क का कुछ भाग दिखाई देता था। सड़क पर सामने के किनारे की तरफ पेड़ के नीचे तीन स्त्रियाँ अपने बोरी बिस्तर से एक दायरा सा बनाये हुए लेटी थीं। एक बच्चा उस दायरे में बैठा बँधी हुई चारपाई के पायों पर बारी बारी हाथ रख कर कोई अपना खेल खेल रहा था। एक दूसरा बच्चा जो जरा बड़ा था, एक बछिया को धकेल कर दायरे से हटाने की चेष्टा कर रहा था। सहसा एक स्त्री उठकर बैठ गई और उस बच्चे से उसने तीखे स्वर में कुछ कहा। स्वर से मुझे लगा कि उसकी जबान बंगाली से मिलती जुलती है।

एक व्यक्ति कोने में बैठकर चाय पीता हुआ शायद उस समय मेरा अध्ययन कर रहा था।

अन्दर के कमरे में नवयुवकों की बहस काफी गरम हो रही थी, जब मैं चाय की प्याली समाप्त कर वहाँ से बाहर निकल आया। सामने दायरे में जो स्त्री उठकर बैठ गई थी थी वह अब हिन्दुस्तानी

में बोली, "हमलोगों की मदद करो भाई ! हम लोग गरीब शरणार्थी हैं भाई !" मैंने रुककर उससे पूछा कि वे लोग कहा के रहने वाले हैं। उसने बतलाया कि वे आसाम के बाढ़ पीड़ित शरणार्थी हैं, दो दिन से वहाँ उतरे हुए हैं, वहाँ कोई उनकी जबान नहीं समझता और अब वे लोग वहाँ से कहीं और जाने वाले हैं। 'कहीं और' का भरोसा शायद उनकी एक मात्र आशा थी।

उस स्त्री का आशीर्वाद पाकर मैं स्टेशन के थर्ड क्लास वेटिंग रूम की ओर चल दिया। वहाँ का थर्ड क्लास वेटिंग रूम एक कमरा सा था, जिसके एक ओर टिकट घर था, दूसरी ओर चाय का स्टाल और बीच में बेंचें रखी थीं, अधिकांश ब्रेंचों पर कुछ लोग लेटे थे, पर आसपास कहीं किसी का सामान नहीं पड़ा था। एक बेंच पर एक फटे कानों वाली बुढ़िया बैठी कोई चीज हाथ पर मल कर सूंघ रही थी। एक बेंच पर एक अधेड़ मुसलमान बेंच की पीठ से टेक लगाकर घुटने ऊपर उठाये पैरों को आकाश में झुलाता हुआ शायद आराम कुर्सी पर बैठने का मजा ले रहा था और पास बैठे हुए एक नवयुवक से सिर हिलाता हुआ कोई बात रहा था। वहाँ का वातारण वेटिंग रूम का नहीं, दोपहर को विश्राम करने के एक क्लब का लग रहा था। जिस बेंच पर अधेड़ मुसलमान बैठा था, केवल उसी पर थोड़ी सी खाली जगह थी। मैं वहां बैठ गया। दो एक मिनिट बाद अधेड़ मुसलमान ने कोई बात कही, जिसे सुनकर आसपास जितने लोग जाग रहे थे, सब हंस दिये। नवयुवक ने लक्षित किया कि मैं उस बात को नहीं समझ सका। वह मुझे लक्षितकर के अंग्रेजी में समझाने लगा, "बात यह है मिस्टर, कि मैं इनको बता रहा था कि हर इन्सान को जिन्दगी में तीन चीजें आवश्यक रूप से मिलनी चाहिएं जो उसका हक है, खाना, कपड़ा और मकान। मगर ये अभी कह रहे थे कि इन्सान को तीन नहीं चार चीजें चाहिए, खाना, कपड़ा, मकान और एक औरत !"

कुछ देर तक नवयुवक बहस करके उस व्यक्ति को शायद यह समझाने की चेष्टा करता रहा कि इन्सान से उसका अर्थ केवल पुरुष से ही नहीं, परन्तु वह व्यक्ति अन्ततक अस्वीकृति के रूप में सिर हिलाता रहा। फिर नवयुवक उसे छोड़कर मुझसे बात करने लगा।

"यह जगह एक अच्छा खासा क्लब लगती है," मैंने उससे कहा।

"मैं यहां रोज दोपहर को आता हूँ," वह बोला, "जगह अच्छी है—छोटी-सी और शांत। फिर चाय, काफी और खाने की चीजें भी यहां मिल जाती हैं। एक से साढ़े चार के बीच कोई गाड़ी नहीं आती, इसलिए आदमी आराम से सो सकता है। हवादार होने के कारण गर्मियों के लिए यह बहुत अच्छी जगह है।"

मुझे उस समय लगा कि जगह-जगह बिखरे हुए कई छोटे-छोटे केन्द्र हैं, जो अप्रकट रूपसे जीवन की दिशा का निर्धारण कर रहे हैं। पगडण्डी के पास की जमीन जहां पर खुदाई हो रही थी, मुस्लिम होटल का पिछला कमरा जहां वे नवयुवक बहस कर रहे थे, पेड़ के नीचे का रास्ता जहां वे शरणार्थी अपना घर बनाये थे और वह थर्ड क्लास का वेटिंग रूम—सब उन छोटे-छोटे केन्द्रों में से ही हैं।

काफी, इन्सान और कुत्ते

'ऊटी पचहत्तर मील'—मील के पत्थर पर खुदे हुए उन शब्दों को मैं कई क्षण तक देखता रहा। मैं कालीकट से चुन्देल आकर वहां पर बस से उतरा ही था। सामान मैं कालीकट में ही छोड़ आया था। चलते समय मुझे याद नहीं था कि मैं ऊटी की सड़क पर जा रहा हूं। अब चुन्देल उतर कर उस मील के पत्थर को देखते हुए मेरा मन होने

लगा कि मैं दूसरी बस से ऊटी चला जाऊं—कुल पचहत्तर मील ही तो सफर है। परन्तु गले में एक सूती कमीज थी, और आठ हजार फुट की ऊंचाई पर पहुँचकर रात बितानी पड़ती, इसलिए मैंने आँखें मील के पत्थर से हटाईं और बाईं ओर को उस कच्चे रास्ते पर चल पड़ा जिसके दोनों ओर चाय के पौधे उग रहे थे।

उससे पहली शाम मैंने कालीकट के समुद्रतट पर बिताई थी। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा था उस समय जितने लोग वहाँ आये हुए थे, वे इस तरह एक दूसरे से अलग, नाना दिशाओं में मुंह किये लेटे या बैठे थे, जैसे संसार से रुष्ट होकर वहाँ आये हों, या गम्भीर चिन्तन में निमग्न हों। हर आदमी ने दूसरों से अपना भिन्न अपना बैठने का एक विशेष कोण बना रखा था। एक जगह तीन व्यक्ति कुहनियों पर सिर रखे एक दूसरे के आगे लेटे हुए थे - एक दूसरे से दो दो फुट नीचे को हट कर। वे शायद अपनी व्यक्ति भावना और समष्टि भावना का समझौता किये हुए थ। परन्तु कुछ देर बाद जब वहाँ चहल पहल हो गई तो ये सारे व्यक्तिवादी मनुष्यों की भीड़ में विलीन हो गये।

कालीकट व्यापारिक नगर है और वहां का समुद्रतट भी जहाजों का माल चढ़ाने उतारने का एक केन्द्र ही है, अतः मैंने केवल एक रात वहाँ बिताकर आगे चल देने का निश्चय कर लिया था। चलने से पहले मैं चाय और काफी के बाग देखने चुन्देल आ गया था, जो कालीकट से चालीस मील दूर है।

'दो पत्तियाँ और एक कली'- मैंने कच्चे रास्ते पर एक पौधे से चाय की पत्तियाँ तोड़कर सूंघते हुए अपने आप से कहा। मेरे सामने उस समय नीलगिरी की उस श्रेणी का जितना भाग था उस पर दूर दूर तक चाय के ही पौधे लगे हुए दिखाई दे रहे थे। कुछ दूर ऊंचाई पर चाय की फैक्टरी थी। मैं उस फैक्टरी में चला गया और कुछ समय

मैंने फैक्टरी में यह देखते हुए बिताया कि केतली तक आने से पहले चाय की पत्तियाँ किस बुरी तरह से सुखाई,, मसली, तपाई और काटी जाती हैं। फैक्टरी से निकल कर मैंने एक मजदूर से पूछा कि काफी के बाग किधर हैं ?

उसने जिधर संकेत किया मै उसी ओर को चल पड़ा। कुछ आगे जाकर दो रास्ते आ गये। मैं कुछ देर अनिश्चित सा खड़ा रहा। एक ओर से कुछ व्यक्तियों के बात करने की आवाज सुनाई दे रही थी। मैं उसी ओर को चल पड़ा। थोड़ा आगे जाने पर मैं एक खुले भाग में आ गया जहाँ एक ओर कुछ नीचे छः सात मजदूर शायद खाद तैयार कर रहे थे। यह सोचकर कि बिना इशारों के वे मेरी बात ठीक से नहीं समझ सकेंगे, मैं कूदता हुआ उनके पास तक चला गया और—वहाँ जाकर मैंने इशारो का प्रयोग करते हुए उनसे पूछा कि काफी के बाग के पहुँचने के लिए मुझे किस रास्ते से जाना चाहिए !

काम रोक कर उन लोगों ने मेरी तरफ देखा और फिर एक दूसरे से कुछ कहा। फिर उनमें से एक जरा आगे आता हुआ बोला—
"मलयाली ?"

मैंने सिर हिलाया कि मैं मलयालम् नहीं जानता। "तामिलु ?"

मैंने फिर सिर हिलाया कि मैं वह भी नहीं जानता। 'हिन्दुस्तानी ?'

"हिन्दुस्तानी जानता हूं," मैंने एक एक शब्द का अलग उच्चारण करते हुए कहा।

"क्या पूछते हो बोलो, !" उसने और पास आते हुए कहा।

"दोस्त, मैं काफी के बाग का रास्ता पूछ रहा था। इस तरफ से जाऊं या उधर वाली सड़क से ?"

"इधर कोई काफी का बाग नहीं है। किसने तुमको इधर भेजा ?"

मैंने उसे बताया कि मैंने एक मजदूर से रास्ता पूछा था और उसने इशारे से बतलाया था कि मैं उस तरफ जाऊं।

इस पर वह मुस्कराया और बोला,—"उसने शायद समझा कि तुम काफी पीने की जगह पूछते हो। इधर जाने से काफी पीने का होटल मिलेगा। काफी का बाग दूसरी तरफ है। मुझको इधर काम है नहीं तो मैं चलकर दिखा देता, और अपने साथियों की ओर मुड़कर उसने उनसे कुछ कहा और फिर बोला, "अच्छा चलो आओ, मैं चलता हूं।" और वह खाद में से होता हुआ दूसरी ओर को चल दिया। मैं भी टखने टखने गीली खाद पर हल्के हल्के पैर रखता और पत्थरों पर पैर जमाकर अपना संतुलन ठीक करता हुआ उसके पीछे पीछे चला। फिर एक पगडंडी पकड़ कर हम सड़क पर पहुंच गये।

सड़क पर आकर उसने पूछा, "इधर कैसे आये?"

"घूमने," मैंने कहा।

"खाली घूमने?" उसने पूछा, "कौन कौन सी जगह देखी?"

मैंने उसे संक्षेप में बता दिया।

"घूमने में बहुत मजा है, "वह बोला, "मैं भी बहुत घूमा हूं। बर्मा, सिंगापुर, ईरान, कलकत्ता, दिल्ली, पंजाब—सब जगह देख आया हूं। मैं फौज में गया था। फौज में ही मैं हिन्दुस्तानी सीखा हूं। थोड़ा थोड़ा पंजाबी भी सीखा हूं—'की गल्ल ए ओए कुत्ते दिया पुत्तरा'—और वह खिलखिलाकर हंस पड़ा।

नीलगिरी की ऊपरी शृंखलाओं की ओर से बड़े बड़े सफेद बादल के टुकड़े इस तरह आ रहे थे जैसे कोई निश्चित अंतर से एक एक टुकड़ा हवा में उड़ा रहा हो। उनकी वजह से घाटी में धूप और छाँह की शतरंज सी बन रही थी। हमारे रास्ते पर भी कुछ क्षण धूप रहती

कुछ क्षण छाया आ जाती है। रास्ता बल खाता हुआ नीचे की ओर उतर रहा था।

चलते चलते उसने मुझे बताया कि उसका नाम गोबिन्दन है। लड़ाई बन्द होने पर उसे फौज से निकाल दिया गया था। तब से वह वहाँ पर मजदूरी कर रहा था। उसे एक रुपया पाँच आने रोज़ मजदूरी मिलती थी, जिसमें चार व्यक्तियों के परिवार का गुजारा करना होता था। वे लोग मजदूरी में वृद्धि और वेतन सहित अवकाश पाने के लिए लड़ रहे थे।

"दो हफ्ता हुआ चाय की फैक्टरी के मजदूर लोग ने फैक्टरी के मैनेजर को घेर लिया था," गोविन्दन् बोला, "क्योंकि उन लोग का माँगें मैनेजर ने नहीं माना था। पुलिस आया। बहुत गड़बड़ हुआ।"

"फिर मैनेजर ने माँगें मानीं कि नहीं?" मैंने पूछा।

"वह तो मानेगा। नहीं मानेगा तो मजदूर लोग काम नहीं करेगा।"

सड़क के एक मोड़ पर आकर गोविन्दन् ने कुछ दूर संकेत करते हुए कहा, "उधर एक काफी का बाग है। मुझे जाकर काम करना है नहीं तो मैं साथ ही चलता......मगर कोई बात नहीं। वहाँ तक चलता हूँ, चलो।"

मैंने उससे कहा कि वह अपने काम का हर्ज न करे, मैं चला जाऊँगा।

"हर्ज क्या है मैं अपना हिस्से का काम जाके पूरा करूँगा, चलो।"

और वह फिर साथ चल दिया। अब वह मुझे रास्ते के वृक्षों आदि के विषय में बताता हुआ चलने लगा। उसने एक खट्टे फल का पेड़ दिखाया और उसके विषय में बतलाया कि उसके साथ मिलाकर मछली

पकाई जाती है। फिर उसने जैक फ्रूट का पेड़ दिखाया। फिर एक वृक्ष के नीचे रुक कर उसने कहा, "यह काजू का पेड़ है।"

"यह पेड़ मैंने रास्ते में भी देखा है," मैंने कहा, "मगर इस पर काजू कहाँ लगते हैं?"

"अभी मौसम का शुरु है," गोविन्दन् बोला, "मौसम में इसमें पीला पीला लाल लाल फल लगेगा। उधर की तरफ फल नहीं जाता नट जाता है। हर फल के साथ एक नट लगता है। देखो एक फल लगा है, तुमको देता हूं।"

गोविन्दन् वृक्ष पर चढ़ गया। फल वृक्ष की सबसे ऊंची टहनी पर था। पक्की डाल पर खड़े होकर उसका हाथ फल तक नहीं पहुँचा। उसने एक पैर कच्ची डाल पर रखा। फिर भी उसका हाथ नहीं पहुँचा।

"रहने दो," मैंने उससे कहा, "डाल टूट जायेगी।"

"तुम कितना दूर से आये हो," वह बोला, "मैं एक पैर और नहीं चढ़ सकता?" और उसने दूसरा पैर भी कच्ची डाल पर रख दिया। डाल बुरी तरह से लचक गई, पर उसने फल तोड़कर नीचे फेंक दिया। मैंने फल उठा लिया। जरा सा मरोड़ने से उसके नीचे लगा हुआ नट अलग हो गया। उसे जेब में रखकर मैं फल खाने लगा।

गोविन्दन् नीचे उतर आया तो मैंने उससे पूछा, "मौसम में यह फल यहाँ खूब खाया जाता है?"

"खाया भी जाता है और फेंका जाता है," उसने कहा, "पहले इससे शराब निकलता था। अब शराब निकालने का तो मना है। निकालने वाला तो अब भी निकालता है, मगर बहुत सा फल ऐसे ही जाता है।"

अब चलकर हम काफी के बाग में पहुंच गये। ढलानों पर काफी

के पेड़ों के साथ साथ वहां नारंगी के पेड़ और काली मिर्च भी लगाई गई थी। कई मजदूर स्त्रियाँ पुरुष काफी के लाल लाल बेर टोकरियों में जमा कर रहे थे। एक जगह वे बेर सूखने के लिए फैलाये जा रहे थे। वहां पहले कई दिनों के बेर भी सूख रहे थे। चार पांच दिन में वे बेर धीरे धीरे सूखकर काले पड़ जाते हैं तब वे 'क्योरिंग' के लिए भेज दिये जाते थे।

गोविन्दन् बतलाने लगा कि उस जमीन में पानी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसने यह भी बतलाया कि मालिक के पास तीन चार सौ एकड़ जमीन है और हर एकड़ जमीन से कम से कम चार पाँच हजार रुपये की सालाना आमदनी होती है।

ऊपर दो तीन कुत्तों के जोर जोर से भौंकने की आवाज सुनाई देने लगी। एक मजदूर लड़की उधर से दौड़ती हुई आई और उसने ऊपर की ओर इशारा करते हुए गोविन्दन् से कुछ कहा। गोविन्दन् ने मुझे बतलाया कि मालिक ने ऊपर से पूछ भेजा है कि मैं कौन हूँ, और बिना उसकी इजाजत के उसकी जमीन पर क्यों आया हूं। फिर जरा धीमे स्वर में बोला, "वह डरता है कि उस दिन जिस तरह मजदूर लोग चाय फैक्टरी के मैनेजर को घेर लिया उसी तरह किसी दिन इसको भी न घेर ले। वह समझता है कि तुम मजदूरों को ऐसा कुछ सिखाने के वास्ते आये हो।"

फिर अपनी भाषा में उसके लड़की से कुछ कहा और मुझसे बोला, "चलो चलें।"

मैंने चलते हुए गोविन्दन् से पूछा कि वहां काम करने वाली औरतों को क्या मजदूरी मिलती है।

"औरत लोग को एक रुपया मिलता है," गोविन्दन् बोला, 'बच्चे लोग को दस आना मिलता है। किसी का कभी सेहत खराब हो,

थोड़ा कम काम करे तो मालिक बस निकाल देता है। कोई ज्यादा काम करे तो तरक्की नहीं देता। दूसरे लोग से भी बोलता है कि उतना ही काम करो। अपने को कुछ काम करने को नहीं। खाली डण्डा और कुत्ता लेकर घूमता है।"

उसका कहने का ढंग ऐसा था कि मुझे हंसी आ गई।

"बड़ा बड़ा कुत्ता है, बहुत भौंकता है," गोविन्दन् बोला, "ऐसे आदमी को आदमी की मदद का तो आसरा नहीं है। खाली कुत्ते का ही आसरा है।" और अपनी बात से खुश होकर वह हंस दिया।

हम बाग से बाहर की सड़क पर आ गये। अब गोविन्दन् चलता हुआ मुझे बताने लगा कि वहाँ मिट्टी की दीवारें किस तरह बनाई जाती हैं। हम उस जगह के पास आ गये जहां से गोविन्दन् मेरे साथ चला था। मैंने उसे इतना समय अपने साथ बिताने के लिए धन्यवाद दिया। गोविन्द ने नीचे काम करने वाले साथियों को आवाज देकर उनसे एक बात की और मुझसे बोला, "चलो तुम्हारे साथ बस की सड़क तक चलता हूँ। काम तो मेरे हिस्से का रखा है, आके करूंगा।"

और वह मेरे साथ बस की सड़क की तरफ चल पड़ा।

बस यात्रा की साँझ

चुंदेल से कालीकट के रास्ते में—

बस एक छोटी सी बस्ती के बाजार में रुकी थी। पहाड़ी बाजार था—मतलब एक ओर तीन चार दुकानें थीं और दूसरी ओर—पत्थरों की मुंडेर, जिसके नीचे घाटी थी। वहाँ सभी लोग बस से उतर कर

चाय काफी आदि पीने लगे थे। एक आने में काफी का बड़ा सा गिलास पीकर जब मैं दुकान में से सड़क पर आया तो मुझे महसूस हुआ कि दिन का रंग सहसा बदल गया है—कुछ ऐसा ऐसा हो रहा है जैसे आँधी आने वाली हो। परन्तु आँधी नहीं आ रही थी, अस्त होते हुए सूर्य के आगे एक बादल का टुकड़ा आ गया था। सूर्य की लाली उस बादल के टुकड़े पर फैल गई थी और उसकी छाया जमीन पर पड़ रही थी।

"च्वि च्वीयु ! च्वि च्वीयु !" एक पक्षी लगातार बोल रहा था। उस ध्वनि को सुनकर मन होता था कि उसी तरह उसका उत्तर दिया जाय, "च्वि च्वीयु ! च्वि च्वीयु।"

मुंडेर के पास खड़ा होकर मैं घाटी की ओर झाँकने लगा। एक युवती कुछ गौओं को लिये ऊपर सड़क की तरफ आ रही थी। जिस वेश में वह थी, उस वेश में मैंने कई स्त्रियों को कालीकट से आते हुए भी देखा था—दूध की तरह सफेद तहमद चोली और पटका। पटका बाँधने का उनका विशेष ढंग है। गज भर का सफेद कपड़े का टुकड़ा लेकर एक ओर के दोनों सिरों को तो वे सिर पर पीछे की ओर गांठ दे लेती हैं और दूसरी ओर के सिरे खुले छोड़ देती हैं। इस दूधिया वेश में कन्नड के स्त्री-सौन्दर्य को देखकर चित्रों में देखी हुई मिस्र की रमणियों की याद हो आती है। परन्तु इस वेश में जो सादगी है, वह उस तुलना में नहीं रखी जा सकती।

वह युवती गौओं को लेकर सड़क पर पहुंच गई और सीधी सधी हुई चाल में आगे चलती गई। तब मेरा ध्यान आसपास मंडराती हुई तितलियों की ओर चला गया। एक ही रंग की अनेक तितलियां थी—हरा शरीर और उस पर काले रंग के उलझे हुए वलय। कुछ एक तितलियां, गहरे मटियाले रंग की थीं, जिनके पंखों के बार्डर सफेद थे।

वे जमीन से एक-दो फुट की ऊंचाई पर इधर उधर उड़ रही थीं।

ड्राइवर ने हार्न बजा दिया। मैं ड्राइवर के साथ की अपनी सीट पर जा बैठा। सूर्यास्त के बाद आकाश का रंग इस तरह बदल रहा था कि एक एक क्षण में होने वाले परिवर्तन को लक्षित किया जा सकता था। वह पक्षी उसी तरह बोल रहा था—, "च्वि च्वीयु! च्वि च्वीयु!" ड्राइवर ने बस चला दी। मैं खिड़की के बाहर झाँक कर देखने लगा कि पक्षी की आवाज कितनी पीछे रहती जा रही है। फिर मैं घनी हरियाली में जगह जगह निकले हुए वृक्षों के नये पत्तों को देखने लगा जो अभी सुर्ख थे, और दूर से सुर्ख फूलों के गुच्छों जैसे लगते थे। एक मोड़ के बाद सहसा वह भाग आ गया जहां एक ही पहाड़ी की डेढ़ दो हजार फुट की सीधी ऊंचाई से बस चक्कर काटती हुई जमीन और छोटी छोटी नदियों, टीलों और छोटे छोटे तालों का समूह दिखाई देती हैं। ज्यों ज्यों बस नीचे उतर रही थी, सामने उस दृश्य के फैलाव पर अंधेरा बढ़ता जा था। ऐसे लग रहा था जैसे आलोक की दुनिया से हम नीचे अँधेरे की दुनिया में उतर रहे हों।

जब तक हम नीचे खुले भाग में पहुंचे अंधेरा पूरी तरह छा गया था।

सुरक्षित कोना

कालीकट से अरणर्यकुलम जाते हुए रास्ते में मैं त्रिचुर में वडक्कुनाथन् का मन्दिर देखने उतर गया। मन्दिर के पश्चिमी गोपुरम् के बाहर रुककर मैंने वहाँ बने हुए विशाल स्तंभ को देखा और फिर कुछ समय गोपुरम् के शिल्प को देखता रहा। वहां से आँखें हटाकर जब मैं अन्दर

की ओर चला तो अन्दर से पूजा करके लौटते हुए एक युवक ने मुझ पर एक अध्ययनात्मक दृष्टि डाली और रुककर पूछा "आप मन्दिर के अन्दर जा रहे हैं?"

मैंने सिर हिलाकर 'हां' में उत्तर दिया।

"आप इस वेश में अन्दर नहीं जा सकते," उसने कहा।

मैंने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा।

"अन्दर जाने के लिए यह आवश्यक है, वह बोला, "...कि आप इस वेश में हों, जिस वेश में इस समय मैं हूं।"

वह दो गज की धोती दक्षिणी ढंग में तहमद की तरह बांधे था, और कंधे पर गज भर का दोपट्टा अंगोछे के लिए था। गले में उसने कुछ नहीं पहन रखा था। वह बात बहुत विनम्र ढंग से कर रहा था और चहेरे के भाव से भी अत्यन्त सौम्य प्रकृति का जान पड़ता था।

"परन्तु, मैं तो धोती साथ लेकर नहीं आया," मैंने कहा।

"आप कहाँ से आये हैं?" उसने पूछा।

"आज कालीकट से आ रहा हूँ। पीछे शिमले से आया हूँ।"

"इतनी दूर से?" बड़ी दूर से आये हैं आप!" उसने वास्तविक आश्चर्य के साथ कहा, और फिर बोला, "आप मन्दिर देखना चाहते हैं तो एक तरीका हो सकता है। अगर आप को आपत्ति न हो मेरा घर पास ही है मैं आप को धोती दे सकता हूं पर आप को आपत्ति न हो तो!" उस का बात करने का ढंग बहुत संकोचशील और क्षमा याचना की तरह का था।

"मुझे आपत्ति क्यों होगी?" मैंने कहा, "मैं आप का अनुगृहीत हूंगा कि मुझे बिना मन्दिर देखे ही नहीं लौट जाना पड़ा।"

"तो आइए...वैसे आपत्ति की कोई बात नहीं है मैं ब्राह्मण हूं

पर मैंने सोचा आप को धोती बाँधने में आपत्ति न हो, मुझे बड़ी खुशी है आप इतनी दूर से आये हैं···"वह हाथ हिला हिलाकर बात कर रहा था और उन व्यक्तियों में से लगता था, जिनके स्नायुओं को हर बात बहुत जल्दी प्रभावित करती है।"

घण्टे भर बाद, मैंने धोती बाँधे, कंधेपर दोपट्टा रखे, उसके साथ ही मन्दिर के पश्चिमी गोपुरम् के अन्दर प्रवेश किया। उसका नाम श्रीधरन् था और वह त्रिपुर की एक धार्मिक संस्था में काम करता था। उसदिन रविवार होने के कारण उसकी छुट्टी थी।

वडक्कुनाथन् मन्दिर में घूमकर मेरा कुछ नये देवताओं से परिचय हुआ, जिन्हें मैंने पहले नहीं देख रखा था। परम शिव, विघ्नेश्वर, पार्वती, शंकरनारायण, श्री राम और गोपाल कृष्ण, ये सब परिचित देवता थे, नये देवता थे, सिंहोदर (जिसे शिव के भूतों में मुख्य माना जाता है), धर्म शास्ता अय्यप्पा (जिसे शिव और मोहिनीरूप विष्णु के संयोग से उत्पन्न माना जाता है, और जो मुझे बताया गया कि भक्तों की नई नस्ल का प्रिय देवता है), और बलि (जो प्रगतिशील देवता है, क्योंकि पुजारियों का विश्वास है कि वह दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है, हालाँ कि अपने जीवनकाल में उन्होंने उसमें होने वाले परिवर्तन को लक्षित नहीं किया। वैसे वे उसे देवता नहीं मानते, आज के युग का प्रतीक मानते हैं। इस दृष्टि से उनका विश्वास झूठा नहीं।)

देवताओं का परिचय देकर श्रीधरन् मुझे क्यूथम्बलम में गया। वह एक तरह की नाट्य शाला थी, जहाँ पर अभिनय के साथ पौराणिक गाथाओं का सस्वर पाठ किया जाता था। वहाँ से लौटते हुए श्री धरन् मुझे मन्दिर में प्रधान उत्सव त्रिचुरपुरम के विषय में बताने लगा। जो कुछ उसने बताया उसका सारांश यह था कि त्रिचुरपुरम प्रति वर्ष अप्रैल में पड़ता है। उस रात को मन्दिर के बाहर थाक्किन

काउं मैदान में चालीस हजार रुपये की आतिशबाजी चला दी जाती है। जिन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ कोचिन के सम्पर्क बने, उन दिनों वहाँ का राजा राय वर्मा था, जिसे शक्थ थयूरन् (योग्य शासक) के नाम से भी जाना जाता है। इस राय वर्मा ने त्रिचुर के एक अभिजात नायर परिवार की युवती के साथ विवाह किया था। त्रिचुर पूरक उसी सम्बन्ध की खुशी में मनाया जाता है। उन दिनों मन्दिर के दक्षिण की ओर टीक का घना जंगल था, और जिस व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिया जाना हो, उसे उस जंगल में भेज दिया जाता था और वहाँ जंगली जानवर उसे खा जाते थे। राय वर्मा ने अपने विवाह के उपलक्ष में उस जंगल को कटवा दिया, जिससे त्रिचुर के लोगों में उसका आदर बहुत बढ़ गया।

बात करते हुए हम श्री धरन् के घर पहुँच गये। मैंने कपड़े बदल लिये तो उसने मुझ से बाहर के कमरे में बैठने का अनुरोध किया और कहा कि मैं एक प्याली काफी पीकर जाऊं। उसके चेहरे के भाव और हाथों के हिलने में एक विशेष तरह का उत्साह प्रकट हो रहा था, जिसका कारण शायद यह था कि त्रिचुर के बाहर का मैं पहला व्यक्ति था, जो उसके घर में अतिथि के रूप में आया था। मुझे बैठा कर वह स्वयं अन्दर काफी बनाने चला गया। मैं कमरे में फर्श और आसपास की दीवारों को देखने लगा।

मन्दिर जाने से पहले मेरी श्री धरन् से काफी बातें हुई थीं। वह अपनी माँ के साथ उस घर में रह रहा था। उसकी आयु सैंतीस वर्ष की हो चुकी थी, पर उसने विवाह नहीं किया था, और न ही वह जन्म भर विवाह करने का विचार रखता था। वह छोटा ही था जब उसके पिता देहान्त हो गया था। बीच में छोड़ छोड़ कर वह कठिनता से अट्ठाइस वर्ष की आयु में बी० ए० कर पाया था। उसकी मां

धर्म में बहुत विश्वास रखती थी और घर के काम से जितना समय बचता, वह सारा पूजापाठ में लगाया करती थीं। श्री धरन् पर आरम्भ से ही मां का बहुत प्रभाव रहा था। इसीलिए बी० ए० करके उसने यह धार्मिक संस्था की नौकरी कर ली थी, हालाँ कि वहाँ से उसे कुल पैंतीस रुपये ही वेतन मिलता था। त्रिचुर के बाहर उसे और नौकरी मिल सकती थी। परन्तु वह त्रिचुर छोड़कर और कहीं नहीं जाना चाहता था। अपने पैंतीस वर्ष के जीवन में वह केवल एक बार त्रिचुर से बाहर गया था, और वह भी कालीकट तक। कालीकट से लौटकर उसे कई दिन तक ज्वर आता रहा था और उसकी मां का विश्वास था कि भगवान वडक्कुनाथन् से दूर जाने के कारण ही उसे ज्वर आया था। श्री धरन् को मां की बात पर पूरी आस्था थी। मां स्वयं घर से मन्दिर के रास्ते को छोड़कर जीवन भर त्रिचुर के और किसी रास्ते पर भी नहीं गई थी। केवल एकबार श्री धरन् मां को एक धार्मिक चित्र दिखाने ले गया था। उस रात को मां ने एक बहुत बुरा स्वप्न देखा था और निश्चय किया था कि भविष्य में वह कभी अपने निश्चित रास्ते को छोड़कर और किसी रास्ते पर नहीं जायेगी। श्री धरन् को गर्व था कि उसके घर का वातावरण बहुत शान्त रहता है और और घरों की तरह किसी तरह की कलह आदि की ध्वनि उस शांति को भंग नहीं करती थी। उसे और उसकी माँ को उस शांति का इतना अभ्यास हो चुका था कि वे किसी ऐसे परिवर्तन के लिये तैयार नहीं थे, जिससे वह वातावरण बदल जाय। इसी लिए श्री धरन् ने विवाह नहीं किया था। माँ उसके इस जितेन्द्रिय संकल्प से सन्तुष्ट थी, क्यों कि उसकी दृष्टि में इस तरह वह अपना पारलौकिक जीवन बना रहा था। जीवन में कभी असुविधा न हो इस लिए श्रीधरन् भोजन बनाने में मां की सहायता किया करता था।

घर का फ़र्श बहुत चमक रहा था। शायद माँ उस फ़र्श को प्रति

दिन बहुत मेहनत से साफ़ करती थी। वैसे घर बहुत पुराना था और उसकी दीवारों में जगह-जगह दरारें पड़ी हुई थीं। घर में तीन कमरे थे। एक आने का कमरा, जिसमें मैं बैठा था, एक रसोई का कमरा और एक पीछे का अंधेरा कमरा जिसे मैंने नहीं देखा था। उस कमरे में माँ रहती थी और उसी में उसने एक छोटा-सा मन्दिर भी बना रखा था। घर के आँगन में एक कुआँ था, जिसपर मैं सवेरे नहाया था। घर के आगे घर की ही छोटी सी गली थी, जिसके साथ दीवार उठी हुई थी, जो उस घर को बाहर की गली से अलग करती थी। अन्दर की गली के सिरे पर एक छोटा सा दरवाज़ा था, जो बाहर की गली में खुलता था। उस दरवाज़े को बन्द कर देने से वह घर बाहर की दुनिया से बिल्कुल कट जाता था। अन्दर की गली में घर की सीढ़ियों के पास एक बड़ा सा पीपल का पेड़ लगा था, जिसकी सूखी पत्तियाँ टूट टूट कर छोटी-सी खिड़की के रास्ते उस चमकते हुए फ़र्श पर आ गिरती थीं। उस पूर्ण निःस्तब्धता में किसी पत्ती के फ़र्शपर घिसटने का शब्द सुनाई देता तो बड़ा विचित्र लगता था।

श्री धरन् थाली में काफी की प्यालियाँ रख कर ले आया। उस समय उसके चेहरे पर कुछ उद्विग्नता की छाप दिखाई दे रही थी। प्यालियाँ रखते हुए मैंने उसके हाथ में हलका-सा कम्पन लक्षित किया। उसने एक प्याली मेरी ओर बढ़ा दी और जैसे चेष्टा पूर्वक मुस्कराता हुआ दूसरी प्याली आप उठा कर पीने लगा। मुझे चुपचाप काफ़ी पीते जाना अच्छा नहीं लगा, इस लिए मैंने बात चलाने के लिए उससे पूछा कि वह अपना रविवार किस तरह बिताता है।

"मन्दिर से आकर ...मैं माँ से भगवद्गीता का पाठ सुनता हूं," वह बोला, "फिर ...रामकृष्ण मिशन के स्वामी जी के पास चला जाता हूं। उनके पास से आकर ...माँ को उनका प्रवचन सुनाता हूं।

सायंकाल फिर मन्दिर में चला जाता हूं। मन्दिर से लौटने तक… खाना बनाने का समय हो जाता है।"

"इस कार्यक्रम से कभी आप का दिल नहीं उकताता?" मैंने पूछा।

उसके चेहरे पर ऐसा भाव आया, जैसे मैंने कोई न कहने की बात कह दी हो। उसने एक बार जल्दी से अन्दर की ओर देखा और फिर मेरी ओर देखकर दबे हुए स्वर में कहा," माँ अँग्रेज़ी नहीं समझती… नहीं तो उसे यह बात सुनकर बहुत दुःख होता।"

मैंने खेद प्रकट किया और कहा कि मेरा अभिप्राय किसी तरह का आक्षेप करने का नहीं था मैं तो केवल जानकारी के लिए पूछ रहा था।

"आप ठीक कहते हैं," वह बोला," बाहर का आदमी… शायद नहीं समझ सकता," और फिर एक बार अन्दर की ओर देखकर बोला," हमें तो लगता है कि हमें बहुत कम समय मिलता है। इतना कुछ और किया जा सकता है… पर बहुत सा समय दूसरे कामों में चला जाता है।"

वह सहसा उठकर जल्दी-जल्दी कदम उठाता हुआ अन्दर चला गया। मैंने काफ़ी समाप्त कर ली थी। प्याली रखकर मैं उसके बाहर आने की राह देखने लगा। मेरी दृष्टि दीवारों पर लगे हुए चित्रों पर घूमने लगी, धर्म शास्त्र अध्यधा, राजा राय वर्मा और अभिजात वर्ग नायक सुन्दरी, राजा रामवर्मा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कप्तान, रामकृष्ण मिशन के स्वामीजी, श्री धरन् की माँ, रामेश्वर का मन्दिर…

श्रीधरन् को अन्दर से आते देखकर मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा," देखिये, मैं अब चल रहा हूं। चलने से पहले मैं माँजी को भी धन्यवाद दे दूं…"

"आप चल रहे हैं…" श्रीधरन ने बड़े आकस्मिक ढंग से कहा," चलिये, मैं आप को दरवाजे तक छोड़ आऊं।"

"हाँ, मैं माँ जी से मिल लूँ..." मैंने कहा।

"वह..."श्री धरन् जैसे कठिनाई में पड़ कर हाथ झटकता हुआ बोला," मां की तबीयत कुछ ठीक नहीं है...सिर फिर दर्द कर रहा है...आप..."

"अच्छा आप मेरी ओर से उन्हें धन्दवाद दे दीजियेगा," मैंने कहा और उसे भी धन्यवाद देकर मैं वहाँ से चल पड़ा।

श्रीधरन् अन्दर की गली के दरवाज़े तक मेरे साथ आया। मैंने दरवाज़े से बाहर निकल कर हाथ जोड़ दिये। श्रीधरन् ने भी हाथ जोड़ दिये। परन्तु उनकी आंखों का भाव कुछ ऐसा हो रहा था, जैसे वह अपने एक अपराध को सामने मूर्तरूप में देख रहा हो। मुझे लगा कि मेरा आना शायद घर में ज़िन्दगी की तीसरी मनहूस घटना था। मैं बाहर की खुली गली में चलने लगा।

श्रीधरन् ने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

भास्कर कुरुप

अर्णाकुलम—कोचीन—

कोचीन के समुद्रतट से होकर लौटते हुए नेट के पास आकर मैं एक भवन को देखने के लिए रुक गया। उस भवन में ऐसी कोई विशेषता नहीं, परन्तु कुछ लक्षणों से प्रतीत होता था कि वह या कोई पुराना धर्म-स्थान है या किसी पुराने रईस की बैठक है। उसकी खिड़कियों का आकार और नीचे के रंग कुछ इसी तरह के थे। उस भवन के साथ जो मैदान था, उसमें एक छोटा सा मन्दिर भी बना हुआ था। मन्दिर के पास खेलते हुए लड़के को सम्बोधित करके मैंने पूछा कि वह कौन सी जगह है?

"मटनचरी पैलेस !" लड़के ने कहा।

"किसका पैलेस है यह ?"

"हिज़ हाईनेस का पुराना पैलेस है।"

मैंने उससे कहा कि मैं पैलेस देखना चाहता हूं, उसका चौकीदार कहाँ होगा ?

"ठहरिये मैं बुलाता हूं," कह कर लड़का भागता हुआ पीछे की ओर चला गया। दो तीन मिनिट बाद ऊपर से आकर बोला, सीढ़ियों से ऊपर चले जाइए। चौकीदार अन्दर से दरवाजा खोल रहा है।"

मैं सीढ़ियाँ चढ़ गया। चौकीदार दरवाजा खोल रहा था। वह छोटे कद का व्यक्ति था घनी मूछों और गालों की लकीरों की वजह से तीस बत्तीस वर्ष का दिखाई देता था। मेरे ड्योढ़ी में पहुंचने पर उसने विनम्र गंभीरता के साथ दीवार पर नोटिस की ओर संकेत कर दिया और स्वयं दरवाजे के पास खड़ा रह कर नीचे की ओर देखने लगा।

मैंने नोटिस में पढ़ा कि वह महल डच काल में बना था और कि वहाँ के कुछ प्रकोष्ठों में जो दीवार चित्र हैं वे उस काल की कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। एक प्रकोष्ठ के रामायण म्यूरेल का विशेष रूप से उल्लेख था।

मैं नोटिस पढ़ चुका तो चौकीदार उंगली में चाबी लटकाये चुपचाप आगे आगे चल दिया। पहले वह मुझे जिस कमरे में ले गया, उसकी दीवारों पर शिव पार्वती, अर्द्ध नारीश्वर और लक्ष्मी पार्वती के चित्र बने हुए थे। मैं एक चित्र में रंगों की योजना देखने लगा तो मुझे महसूस हुआ कि चौकीदार ध्यान से मेरे चेहरे का अध्ययन कर रहा है। मेरे उस चित्र से आँखें हटाने पर वह कुछ कहने को हुआ, पर उसने कुछ कहा नहीं। उसके बाद मैं कुछ क्षण दूसरे चित्र को देखता रहा। चौकीदार पुनः जैसे मेरी दृष्टि का अध्ययन करने की चेष्टा कर रहा था। उस चित्र से मेरी आँख हटने के पूर्व थोड़ा आगे आकर कहा,

"यह कथा कली की मुद्रा है, इसमें चेहरे के भाव और उंगलियों की स्थिति को ध्यान से देखिये।"

मैंने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा। जो बात उसने कही थी, उसके अतिरिक्त मुझे उसके अँग्रेजी बोलने पर भी आश्चर्य हुआ उसने बात कहकर आँख हटा ली थीं। मैं फिर से चित्र को देखने लगा। मैंने सोचा कि परम्परा से सुनकर उसने चित्रों के सम्बन्ध में कुछ बातें याद कर रखी होंगी और बाहर से आने वालों के सामने वह बिना स्वयं समझे उन बातों को दोहरा देता होगा।।

वहाँ से हटकर हम एक निचले प्रकोष्ट में गये, जहाँ सफेद पृष्ठ भूमि पर भूरी लकीरों से बनाये गये चित्र थे। इनका विषय था पार्वती विवाह। दीवार के एक कोने से आरम्भ करके मध्य तक, अरुन्धती और सप्तर्षियों की शिव से असुर नाश के लिए विवाह कर लेने की प्रार्थना से लेकर शिव के विवाह के लिए सज्जित होकर आने तक के चित्र थे। दूसरे कोने से आरंभ करके दीवार के शेष भाग में पार्वती के विवाह की तैय्यारी के चित्र थे। कुछ भागों में सफेदी करने वालों ने चित्रों को अपनी कूचियों से छू दिया था। उस ओर संकेत करके चौकीदार ने कहा, "किसी भले आदमी को दीवारें मैली नजर आती थीं। उसने इन्हें सफेद करने की कोशिश की है।"

मैंने पुनः उसकी ओर देखा। उसकी वह टिप्पणी रटी हुई चीज नहीं लगती थी।

"कब की बात है यह?" मैंने उससे पूछा।

उसने मुंह में ही कुछ कहा जो मेरी समझ में नहीं आया। फिर वह मुझे वहाँ से अगले कमरे में ले गया। उस कमरे की दीवारों पर शिव मोहिनी से लेकर पशु पक्षियों तक के रति समय के चित्र बने हुए थे। गोवर्द्धन पर्वत के चित्र की ओर संकेत करके चौकीदार ने कहा,

"देखिये, इसमें पशुओं और पक्षियों के जीवन को कितनी बारीकी से चित्रित किया गया है।"

चित्र में वास्तव में ही पार्वतीय जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया गया था, यद्यपि चित्रकार ने व्रज के गोवर्द्धन पर्वत पर शेर और हरिण भी एकत्रित कर दिये थे। कुछ चित्रों में—विशेतया कृष्ण गोपी विहार के चित्रों में—आँखों के वासनात्मक भाव का भी यथार्थ अंकन किया गया था। परन्तु विषद वस्तु की दृष्टि से उनमें अधिकांश चित्र वीभत्सता की सीमा तक शृंगारिक थे। वह स्वस्थ हृदय मनुष्य की कला नहीं थी, घुटे हुए और भटके हुए मनुष्यों की कला थी जिनका उद्देश्य स्नायुओं की उत्तेजना में जीवन के प्रति अपनी क्लीवता को डुबो देता था। (इस कला की सृष्टि वैसे आज भी चल रही है, और अपने एक रूप में यथार्थ के उद्घाटन की छाया लेकर यद्यपि वास्तव में उसमें रचयिताओं की भटकी हुई वासनाओं का ही व्यक्तीकरण होता है।

अन्त में हम उस कमरे में आये, जिसकी दीवारों पर रामायण म्यूरेल बने हुये थे। कमरे के एक कोने में दिया जल रहा था। यहाँ के रंग अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट थे। मैं दीवार के एक भाग को पास से देखने लगा। चौकीदार ने कहा, "आप इन चित्रों को जरा पीछे हटकर देखिए। तभी आपको सुन्दरता का पता चल सकेगा।"

हर बार बात कह चुकने पर उसकी आँखें दूसरी ओर को हट जाती थीं, और निचला होंठ क्षण भर काँपता रहता था। इस बार मैंने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा, "मालूम होता है, तुमने यहाँ के सभी चित्रों को बहुत ध्यान देकर देख रखा है।"

अब उसने आंखें मेरी ओर कीं और कहा, "मैं एक आर्टिस्ट हूं।" कहते कहते उसकी आँखें झुक गईं।

मैंने आश्चर्य के साथ उसे देखा। खाकी निक्कर और बाहर निकली हुई खाकी कमीज पहने, छोटे कद और दुबले शरीर का वह चौकीदार एक आर्टिस्ट था। मेरा ध्यान दीवार के चित्रों पर से हट गया। मैंने एक ही क्षण में उसकी बाहों और टांगों की रूखी चमड़ी की ओर देखा, उसके फटे हुए पैरों को देखा और उसके होंठों को देखा जो जरा जरा कांप रहा था।

"तुम्हारा नाम क्या है?" मैंने उससे पूछा।

"भास्कर कुरूप," उसने कहा, "मैं कोचिन स्कूल आफ् आर्ट का विद्यार्थी हूं।"

"परन्तु तुम आर्ट स्कूल में जाते हो तो साथ यह काम किस तरह कर पाते होगे?"

उसने बताया कि वास्तव में पैलेस का चौकीदार उसका पिता है, जो उन दिनों छुट्टी पर गया है और उसे अपने स्थान पर काम करने के लिए छोड़ गया है, वह आर्ट स्कूल जाते समय अपने छोटे भाई रामन को ड्यूटी पर छोड़ जाता है। उस दिन जनतंत्र दिवस होने के कारण आर्ट स्कूल बन्द था।

हम बात करते हुए बाहर की ड्योढ़ी में आ गये। मैंने भास्कर से पूछा कि उसकी ड्यूटी अभी कितना समय और है। उसने बताया कि ड्यूटी का समय हो चुका है। मैंने प्रस्ताव किया कि हम बाहर चलकर चाय पियें।

भास्कर, भास्कर का छोटा भाई रामन, और मैं, हम तीनों एक चाय की दुकान में चले गये। वहां बैठकर बात करते हुए भास्कर ने बताया कि उसकी आयु बाईस साल है और वह पहले हाई स्कूल में रहा है। हाई स्कूल छोड़कर उसने इधर उधर कुछ करने की चेष्टा की, परन्तु किसी काम में वह अपने को स्थिर नहीं कर पाया, क्योंकि उस-

की रुचि दूसरी ओर थी। अन्त में वह किसी तरह कोचिन स्कूल ऑफ आर्ट में प्रविष्ट हो गया। अब वह यह निश्चय किये हुए था कि जैसे भी होगा, अपना आर्ट स्कूल का कोर्स पूरा करेगा, चाहे वह अवकाश के समय हाथ की मेहनत करते हुए ही क्यों न हो।

मुझे सहसा विचार आया कि उसकी बनाई हुई कोई चीज तो मैंने देखी ही नहीं। मैंने भास्कर से कहा, "देखो, यहाँ से उठकर तुम्हारे घर चलेंगे। मैं तुम्हारे बनाये हुए चित्र देखना चाहता हूँ।"

मेरी इस बात से भास्कर थोड़ा कुण्ठित हो गया। अपने नाखूनों को देखता हुआ बोला, "मैं तो अभी विद्यार्थी ही हूँ, मेरा हाथ अभी साफ नहीं हुआ। कुछ पेंसिल के खाके घर पर रखे हैं, मगर कुछ खास नहीं हैं।"

"खास न सही, फिर भी दिखाने में तो कोई हर्ज नहीं," मैंने कहा।

"नहीं, हर्ज तो कोई नहीं," वह बोला, "मगर कुछ खास नहीं हैं। आप... अच्छा, मैं रामन को भेजकर यहीं पर मंगवा लेता हूं।"

रामन जाकर जल्दी ही लौट आया। भास्कर ने कापी और फ्रेम दोनों उसके हाथ से ले लिये। पहले उसने अपनी कापी मुझे दिखाई। मैं उसके बनाये हुए पेंसिल के स्केच देखने लगा। भास्कर के विषय सीमित थे, परन्तु यह प्रकट था कि वह बहुत रुचि और मेहनत के साथ काम करता है।

"वह क्या चीज है?" मैंने फ्रेम की ओर संकेत करके उससे पूछा।

"वह... विघ्नेश्वर का चित्र है," भास्कर थोड़ा संकोच के साथ बोला, "यह मेरा पहला बड़ा चित्र है।"

उसने फ्रेम मेरे हाथ में दे दिया। फ्रेम में गणपति का पेंसिल से बना चित्र जड़ा हुआ था। उस चित्र में भास्कर का हाथ ज्यादा साफ लगता था। चित्र के नीचे एक कोने में आर्ट स्कूल के अध्यापक के हस्ताक्षर थे कि वह चित्र भास्कर कुरुप की कृति है।

मैंने चित्र से आंखें हटाकर पुनः एक बार भास्कर कुरुप के चेहरे को ध्यान से देखा। वह आस्था के साथ मेरे हाथ में पकड़े हुए अपने उस चित्र को देख रहा था, उसके हृदय का भाव उस समय उसके चेहरे पर आ रहा था—उसके आस्तिक हृदय ने विघ्नेश्वर का चित्र बनाकर जैसे अपने रास्ते के विघ्नों को हटाने का विश्वास पा लिया था। उसकी आंखें चित्र से उठती हुईं मुझसे मिल गईं।

"अब मेरा हाथ पहले से साफ हो रहा है," उसने कहा।

मैं पुनः उस चित्र को देखने लगा। चित्र में बने हुए साँप की कुंडली मुझे बहुत अच्छी लग रही थी। भास्कर अपनी कापी से कागज का एक टुकड़ा फाड़कर उस पर पेंसिल से कुछ लिखने लगा।

जब हम चाय की दुकान से बाहर निकले तब संध्या हो रही थी। बैक वाटर्ज के उस ओर अर्णाकुलम् की प्रधान सड़क की बत्तियाँ सहसा जल उठीं। साथ ही दाईं ओर भारतीय नौ सेना के दो जहाज सहसा जगमगा उठे। उन्हें जनतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में आलोकित किया गया था। भास्कर के फटे हुए नंगे पैर में कुछ चुभ गया। वह झुककर उसे निकालने लगा। जब वह सीधा हुआ तो मैंने उससे विदा मांगी। भास्कर के होंठ कुछ कहने के लिए हिले, पर फिर वह चुप रहकर चल दिया। चार पाँच कदम जाकर वह रुक गया। मैंने बोट जेट्टी की ओर चलते हुए लक्षित किया कि वह अनिश्चित भाव से फिर मेरी ओर आ रहा है। मैं रुक गया। भास्कर ने पास आकर वह कागज का टुकड़ा मेरे हाथ में दे दिया, जिसपर उसने पेंसिल से कुछ लिखा था। मैंने पढ़ा, लिखा था—

भास्कर कुरुप
मटनचरी पैलेस
कोचिन

मैंने पुनः उत्साह के साथ उससे हाथ मिलाया और एक कागज पर अपना पता लिखकर उसे दे दिया। फिर मैंने उससे दूसरी बार बिदा ली।

यूं ही भटकते हुए

एक भिखारिन, अपने बच्चे को छाती से चिपकाये हुए, होंठ उसके गाल से लगाये, अर्द्धनिमीलित आँखों से फुट बोर्ड पर लटक कर चलती गाड़ी से उतर गई......... ।

गाड़ी आलवी स्टेशन के प्लेटफार्म पर आ गई।

आलवी अर्णाकुलम के बहुत पास ही है। सुना था कि वहाँ नदी का पानी बहुत अच्छा है। मैं प्लेटफार्म पर उतर कर, रेल की पटरी के साथ साथ, जिस दिशा में मुझे बताया गया था, उस दिशा में चल पड़ा। नदी तक पहुंचने से पहले, मुझे दो एक जगह रुककर रास्ता पूछना पड़ा। जिस समय मैं नदी के किनारे पहुँचा एक मल्लाह दूसरे पार जाने के लिए सवारियों को बुला रहा था। मैं बिना यह सोचे कि दूसरे पार जाकर क्या होगा, नाव में बैठ गया।

दूसरे पार पहुँचकर मैं किनारे के साथ साथ चलने लगा। नदी में पानी अधिक नहीं था। दो एक जगह किनारे के साथ पशु नहा रहे थे। कुछ नावों में पतली चौकोर ईंटें भरकर ले जाई जा रही थीं। एक जगह नहाने का घाट बना हुआ था, जहाँ पर कुछ लोग दोपहर का स्नान कर रहे थे। सामने नदी का पुल था। पुल की ऊंचाई की

वजह से उसके नीचे से गुजरता हुआ नदी का खामोश पानी बड़ा उदास सा लग रहा था।

मैं किनारे के साथ साथ चल कर पुल के ऊपर चला गया। ऊपर से नीचे झाँकने पर पुल की ऊंचाई और भी ज़्यादा महसूस होती थी। पानी की धार के एक ओर खुली सूखी जमीन पर धोबियों ने कपड़े फैला रखे थे, जो सब सफेद थे। उन फैले हुए कपड़ों को देख कर लगता था जैसे वे किन्हीं मानवीय शरीरों के व्यंग्य चित्र हों, जो कुछ लड़कों ने स्कूल से लौटते हुए चाक के चूरे से बना दिये हों।

दोपहर का नहाना, कपड़े धोना, नावों में ईंटें ले जाना, यह सब कुछ उस पुल पर से देखते हुए, जीवन का एक कटा हुआ टुकड़ा लगता था, जो नदी के पानी के साथ साथ उसी की गति और उसी की खामोशी लिये हुए चल रहा था। मेरा मन हो आया कि नदी के कमर तक गहरे पानी में उतर कर नहाऊं। मैं फिर पुल के नीचे चला गया।

जब मैं नदी से नहाकर निकला तो मेरा मन हो रहा था कि किसी से बात करूं। नदी के पानी ने शरीर में स्फूर्ति भर दी थी और मैं किसी से बात करके एक हल्का सा कहकहा लगाना चाहता था। मैंने एक मल्लाह से बात करने की चेष्टा की, परन्तु उसमें मुझे सफलता नहीं मिली। उसकी भाषा मुझसे भिन्न थी और मेरी मर्जी उस पर अपना कोई भाव प्रकट करने की नहीं, बोल कर कुछ कहने की थी। उस समय मुझे महसूस हुआ कि मैं वहाँ पर अजनबी हूँ। इतने लोगों बीच होते हुए भी जब आदमी किसी से बात नहीं कर सकता, किसी से इतना भी नहीं कह सकता कि 'इस नदी का पानी बहुत ठण्डा है, नहा कर मजा आ गया,' तो यह अजनबीपन महसूस होना स्वाभाविक ही है।

पानी उसी उदास भाव से पुल के नीचे से निकलकर आगे बढ़ता

जारहा था । दो लड़के ऊपर पुलपर आकर पानी की ओर झाँक रहे थे । उनमें से एक ने एक ढेला पानी में फेंका । उससे कुछ छींटें उड़कर मुझ पर पड़ीं और कुछ जमीन पर । फिर दूसरे लड़के ने एक ढेला फेंका । इस बार भी उसी तरह छींटें उड़कर पड़ीं । लड़के दो एक मिनट तक यह खेल खेलते रहे । फिर आगे पीछे भागते हुए पुल से सड़क पर चले गये ! मेरे पास की मिट्टी के जिस भाग पर पानी के छींटें पड़ते रहे थे, उसमें से अब सोंधी सी गन्ध आने लगी । वह गन्ध इतनी परिचित थी कि उसे सूंघते हुए मेरा मन हुआ गीली मिट्टी को पैर के नाखून से जरा सा छेड़ दूं । मेरी अजनबीपन की अनुभूति दूर होने लगी । मैं वहाँ से ऊपर के एक अनजान कच्चे रास्ते पर चल दिया ।

उस रास्ते के एक ओर एक घर में कुछ बच्चे बरामदे में खेल रहे थे । बरामदे में ही एक स्त्री चावल पीस रही थी । एक युवक टाँगें फैलाये फर्श पर बैठा अखबार पढ़ रहा था । यह उस घर का अपना दोपहर का वातावरण था । मुझे उस समय अपने उस घर की याद आई जिसमें मैंने जीवन के पहले पन्द्रह सोलह वर्ष बिताये थे । उस घर की अपनी ही तरह की सुबह और अपनी ही तरह की शाम होती थी—सबेरे स्कूल जाने के समय की हलचल और शाम को पिता के दोस्तों की मजलिस ! यही दोपहरें और सुबह शाम एक घर का इतिहास और संस्कृति बन जाती हैं । ये ही छोटी छोटी सांस्कृतिक इकाइयाँ एक ओर व्यक्तियों का और दूसरी ओर राष्ट्र की सामूहिक संस्कृति का निर्माण करती हैं, जो आगे विश्व संस्कृति के निर्धारण में सहायक हो सकती हैं । फिर मुझे बम्बई के चालों का ध्यान आया जहाँ एक एक तंग कमरे में दस दस बीस बीस व्यक्ति घुटा हुआ जीवन व्यतीत करते हैं । उस रूप में भी घर क्या एक सांस्कृतिक इकाई कहा जा सकता है ? कम से कम व्यक्तियों पर और राष्ट्र की सामूहिक संस्कृति पर इसका प्रभाव तो पड़ता ही है । फिर गली सड़ी

चटाइयों के या चीथड़े चीथड़े कपड़ों के बने हुए घर ? वे भी तो व्यक्तियों का और संस्कृति का निर्माण कर रहे हैं।

आगे कुछ खेतों के साथ रास्ते की तरफ मिट्टी की ऊंची मेंड़ें बनायी गयी थीं, जिन्हें नारियल के पत्तों की चटाइयों से ढका गया था यह शायद बरसात में उनकी रक्षा करने के लिए किया गया था। एक जगह मैदान की खुली धूप में एक मजदूर रोड़े तोड़ रहा था। पास ही तीन चार अस्थिशेष बच्चे, जिनके सिर उनके शरीरों की अपेक्षा अनुपातिक रूप से बहुत बड़े थे, एक दूसरे की ओर रोड़े फेंक रहे थे। कुछ हटकर एक स्त्री अपना सूखा स्तन एक शिशु के मुंह में दिये बैठी थी और बार बार उसके गाल की रूखी त्वचा को चूम रही थी। यह उस परिवार की अपनी दोपहर थी—राष्ट्र की एक और सांस्कृतिक इकाई।

मैं वहां से कुछ आगे जाकर पक्की सड़क की ओर घूम गया।

\+ \+ \+ \+

रात को अर्नाकुलम् के आंबलम् (शिव मन्दिर) का वार्षिकोत्सव था। इस उपलक्ष्य में आंबलम् को चारों ओर से दीपालोकित किया गया था। आंबलम् में देवालय के चारों ओर की दीवारें जाली की तरह की बनी रहती हैं जिनके सूराखों में उत्सव के दिन दिये जला दिये जाते हैं। देवालय की पूर्वभूमि में जो स्वर्ण-स्तम्भ था उसे भी ऊपर से नीचे तक दियों से आलोकित किया गया था। दियों की मालाओं के सौंदर्य को देखता हुआ मैं आंबलम् के पृष्ठ भाग की ओर चला गया क्योंकि उधर उस समय विशेष हलचल प्रतीत हो रही थी। उधर सड़क पर तीन बड़े बड़े हाथी आ रहे थे, जिनके साथ लोगों की बहुत भीड़ थी। हाथी छत्रों और सोने के आभूषणों से अलंकृत थे। बीच के हाथी की पीठ पर शायद देवता की मूर्ति लाई जा रही थी, क्योंकि मैंने सुना था कि कई दिन तक देवता की मूर्ति इस तरह हाथी की पीठ पर

मन्दिर के चारों ओर ले जाई जाती है। आज आराट्ट की—देवता की मूर्ति को जलास्नान कराने की— रात थी। आराट्ट के बाद उस उत्सव की पूर्ति हो जाती है।

हाथियों के साथ तीन व्यक्ति चार-चार ज्योतियों वाली मशालें लिये हुए आ रहे थे। साम्य 'पंचवाद्यम्' चल रहा था। पंचवाद्यम् मैंने उससे पहले भी मन्दिर के एक पार्श्वभाग में सुना था, इस समय रास्ते में भी भीड़ में 'पंचवाद्यम्' सुनने की बहुत रुचि और उत्साह था। शहनाई बजाने वाले विशेष रूप से विभोर होकर बजा रहे थे।

रास्ते में कई घरों के आगे सजी हुई वेदिकाएं बनाई गई थीं। हाथी जब किसी वेदिका के पास पहुँचते तो उन्हें रोक कर वहाँ चावल आदि से पूजा कराई जाती, फिर बीच के हाथी को कुछ नैवेद्य दिया जाता और काफिला आगे बढ़ने लगता। भीड़ धीरे-धीरे घनी होती जा रही थी। प्रायः सभी स्त्रियाँ पुरुष नंगे पाँव थे। अधिकाँश स्त्रियों ने विशेष रुचि के साथ अपने केशों में फूल सजा रखे थे। उनकी केशालंकरण की कई भिन्न-भिन्न शैलियाँ थीं, जिनमें उनकी प्रसाधन रुचि का परिचय मिलता था। कइयों के अपनी-अपनी साड़ी के रंग के साथ सिर के फूलों के रंग का मिलान कर रखा था। हाथी अब मन्दिर की सीमाओं में प्रवेश कर रहे थे जोर जोर से पटाखे चलाये जाने लगे। आराट्ट का समय धीरे-धीरे पास आ रहा था।

किसी तरह भीड़ से निकल कर मैं खुले रास्ते पर आ गया। जिस वेदिकाओं में पूजा हो चुकी थी, उन्हें अब तोड़ा जा रहा था। कुछ इक्के दुक्के लोग जो शायद मेरी तरह भीड़ में से निकल आये थे, अब रास्ते में रुक कर आंबलम् की ओर देख थे। कुछ आगे जाने पर अन्धेरे में एक व्यक्ति सहसा मेरे सामने आ गया और अंग्रेजी में बोला, "मिस्टर, क्या तुम मुझे कुछ दे सकते हो?"

मैंने अचकचाकर उस व्यक्ति को देखा। उसके सिर के बाल और दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उसके कपड़े मैले थे। उसके हाथ में एक फटा पुराना कम्बल था, जिसे वह अपने साथ सटाये हुए था।

"तुम क्या चाहते हो?" मैंने पूछा।

"एक आना, दो आने।"

"तुम अंग्रेजी जानते हो?"

"मैं तीन जबानें जानता हूँ" वह बोला, "अंग्रेजी, संस्कृत और तामिल।" फिर वह उस विषय को समाप्त कर देने के लिए जल्दी से बोला, "तुम मुझे कुछ दे सकते हो?"

"तुम पढ़े-लिखे आदमी होकर भीख माँग रहे हो?" मैंने यह दकियानूसी सवाल पूछ लिना।

"मैं बेकार हूँ और भूखा हूँ।" उसने थोड़ी कटुता के साथ मुझ से कहा।

"पर तुम कुछ न कुछ काम तो ।"

वह सहसा एक तिरस्कार पूर्ण हँसी हँस कर आगे चल पड़ा। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसने मेरे गाल पर चपत दे मारी हो।

पीछे आंबलम् में एक साथ बहुत से पटाखे छूटने की आवाज आने लगी। शायद देवता को जल स्नान कराने का समय आ गया था। मेरे सिर के ऊपर आकाश में आतिशबाजी के नाना रंग बिखर गये।

मैंने एक बार पीछे मुड़ कर देखा। वह व्यक्ति अँधेरे में न जाने कहाँ चला गया था।

अर्णाकुलम् के जिस होटल में मैं ठहरा था, इस होटल का मैनेजर बहुत मिलनसार आदमी था। उसके इस स्वभाव की वजह से जहाँ बिल जरूरत से ज्यादा बढ़ जाता था, वहाँ महसूस यही होता था कि एक दोस्त के घर में मेहमान बनकर ठहरे हुए हैं। वह आग्रह के साथ खिलाता था और बड़ी बेतकल्लुफी के साथ हर तरह का परामर्श देता था।

"आप आज जा रहे हैं?" मैं काफी पी रहा था तो उसने मेरे पास आकर ऐसे स्वर में पूछा जैसे उसके बाद यही कहेगा कि 'नहीं मैं अभी आपको नहीं जाने दूंगा।'

"हाँ, आज शाम की बोट से अलेप्पी जाने की सोच रहा हूँ।" मैंने कहा।

"पेरियार लेक नहीं जा रहे?" उसने कुर्सी खींचकर बैठते हुए पूछा।

मुझे पेरियार लेक की भौगोलिक स्थिति का पता नहीं था। पेरियार लेक की विशेषता क्या है, इसका भी कुछ ज्ञान नहीं था। मैंने कॉफी का एक घूंट भर कर उससे कहा कि मैं पेरियार लेक के विषय में कुछ नहीं जानता।

"वाह! पेरियार लेक दक्षिण-पश्चिमी भारत का सबसे सुन्दर झील है। फिर दूसरी विशेषता यह कि पहाड़ी झील है और उसमें चारों तरफ घना जंगल है जहां से जंगली जानवर आकर किनारे पर पानी पीते देखे जा सकते हैं। शिकार के लिए भी बड़ी अच्छी जगह है।

मैंने काफी का एक घूँट भरा। मेरी कल्पना में पेरियर लेक का चित्र बनने लगा—मीलों के विस्तार में फैला हुआ गहरे हरे रंग का पानी,

हल्की हल्की लहरें, एक छोटी सी नाव, चारों ओर वनी हरियाली से लदे हुए पहाड़ और पूर्ण खामोशी !

"यहाँ से कितनी दूर है ?" मैंने एक और घूँट भरकर पूछा।

"यहाँ से अलेपी न जाकर कोट्टायम जाइए। वहाँ से साठ सत्तर मील होगी। बस या टैक्सी मिल जायगी। आप कहें तो मैं अभी सारा प्रबन्ध कर देता हूँ। सौ रुपये में सब हो जायगा।"

और उसने व्याख्या की कि तीस चालीस रुपये तो यात्रा का व्यय होगा, तीस रुपये वहाँ बोट लेने के देने पड़ेंगे और क्यों कि वहां कोई होटल नहीं है, इसलिए उसके एक अपने आदमी के पास रात रहने खाने और 'शेष सुविधाओं' पर कुल चालीस रुपये व्यय होंगे।

"ऐसे खूबसूरत जगह पर अकेले तो दिल नहीं लगता न ! वैसे हमारी हर चीज आपको अव्वल दर्जे की मिलेगी ..."

मैं मन ही मन मुस्कराया कि बनिये की आंख कहां कहां पहुँचती है। वह व्यक्ति अर्णाकुलम के होटल में बैठा पेरियक लेक की सुन्दरता और उसी इलाके की किसी युवती के शरीर का सौदा कर रहा था !

मैंने कॉफी का आखिरी घूँट भरा और उसे उसके सुझाव के लिए धन्यवाद देकर उठते हुए कहा कि मैं भविष्य में कभी आऊँगा तो पेरियर लेक जरूर जाऊंगा।

"और हमें भी याद रखियेगा," वह साथ ही उठता हुआ बोला, "यह हमारा कार्ड रख लीजिए। पेरियर हमारे जैसा प्रबन्ध आपको और किसी का नहीं मिलेगा।"

शाम को मैंने अलेप्पी जाने वाली फेरी ले ली। अर्णाकुलम से अलेप्पी तक की यात्रा बैक वाटर्ज से की जा सकती है। बैकवाटर्ज की यात्रा का यह मेरा पहला अनुभव था। कोचिन से अलेप्पी तक बैक वाटर्ज का खुला विस्तार है जिसे वेम्बनाद लेक के नाम से जाना जाता

हैं। इस विस्तार में फेरी की यात्रा करना एक रोमांचक अनुभव है। खुले पानी में आकर कहीं-कहीं अनेकानेक बत्तखें तैरती हुई मिलती हैं और प्रतीत होता है कि हम बत्तखों के देश में प्रवेश कर रहे हैं। सहसा फेरी का साइरन बजता है। बत्तखें पानी की सतह छोड़ कर पंख फड़फड़ाती हुई ऊपर आकाश को उड़ जाती हैं और फेरी के ऊपर श्वेत पंखों की छत सी फैल जाती है। थोड़ा उड़कर वे पानी के किसी दूसरे भाग पर उतर जाती हैं और लगता है कि वहां पानी पर बत्तखों का एक सफेद द्वीप तैर रहा है। वहां फिर किसी फेरी का साइरन बजता है और द्वीप फिर फड़फड़ाते हुए पंखों में बदल कर आकाश में उड़ जाते हैं।

धीरे-धीरे रात हो जाती है। चारों ओर का वातावरण रहस्यमय प्रतीत होने लगता है। किनारे के नारियल के झुरमुटों में कहीं कोई बत्ती टिमटिमाती दिखाई दे जाती है। पानी की सतह पर दूरसे कोई रंगीन रोशनी धीरे धीरे अपनी ओर उठती आती है। पास आने पर पता चलता है कि वह ऊपर से आती हुई फेरी की रोशनी है।

अलेप्पी पहुंचने से पहले सबेरा हो जाता है। अब रास्ते में पानी के मोड़ और दोराहें दिखाई देते हैं, क्योंकि कई जगह से बैक वाटर्ज़ का पानी काट कर यातायात के लिए छोटी नहरें बनाई गई हैं। सूर्य की पहली किरण के स्पर्श से सतह पर तारे से झिलमिलाने लगते हैं। फेरी जहां किनारे के पास-पास छाया में चलती है वहां गहरे पानी में नारियल के पेड़ों के लचकते हुए प्रतिबिम्ब ऐसे लगते हैं. जैसे बड़े-बड़े अजगर मुंह में छटपटाते हुए केंकड़े पकड़े पानी के अन्दर किलोल कर रहे हों। आकाश का भी प्रतिबिम्ब पानी में पड़ता है और नीचे के आकाश और बादलों को देखते हुए किसी-किसी क्षण तो लगता है कि हम शून्य में ही चल रहे हैं। फिर सहसा धूप वाला भाग आ जाता है और नीचे का शून्य पानी में बदल जाता है।

शाम को अलेप्पी के समुद्र तट पर मैं कुछ बच्चों के साथ रेत में 'आंबलम्' बनाने का खेलता रहा। जिस समय मैं समुद्र तट पर गया, ये बच्चे—एक लड़की और दो लड़के—वहाँ रेत के घरौंदे बना रहे थे। मैं पहले पास रुक कर उनका हस्त-कौशल देखता रहा। फिर पैरों की उंगलियों के भार बैठ गया। लड़की ने न जाने कैसे पहचान लिया कि मैं मलयालम् बोलने वाला नहीं हूँ। वह अटक-अटक कर वाक्य बनाती हुई बोली, 'आप—हिन्दी—बोलने वाले—हैं ?''

"हाँ," मैंने कहा, "तुम हिन्दी जानती हो ?"

मैं"..हम . हिन्दी में—" यहां पर अटक कर उसने बस्ते से अपनी हिन्दी की पुस्तक निकाली और उसमें देखकर निश्चय करके बोली, "मैं—दूसरी—फार्म में—हिन्दी—पढ़ती हूं।"

हमारी हिन्दी में बातचीत अधिक नहीं बढ़ सकी, क्योंकि वे तीनों कुछ चुने हुए वाक्य ही बोल सकते थे। फिर जल्दी ही हमारी घनिष्ठता हो गयी और वे मुझे रेत का आंबलम् बनाना सिखाने लगे। जिस तरह से उन्होंने रेत में चारों तरफ से सूराख करना आरम्भ किया, उससे तो लगता था कि वे एक भट्टी बनाने जा रहे हैं। परन्तु धीरे-धीरे वे सूराख आंबलम् के अन्दर जाने के रास्ते बन गए, इन रास्तों के आगे गोपुरम् खड़े हो गये और बीच में देवस्थान बन गया। एक लड़के ने अपनी जेब में लाल फूल भर रखे थे। फूल निकाल कर उसने आंबलम् में इधर-उधर बिखरा दिये। इससे शिल्प के साथ आंबलम् का वातावरण भी पैदा हो गया।

अब उन्होंने मुझसे कहा कि मैं भी उसी तरह का आंबलम् बना कर दिखाऊँ। मैंने तत्परता से निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया। परन्तु जब मेरा आंबलम् बनकर तैयार हुआ तो वह आंबलम् की बजाय भूतों का डेरा लगता था। वे तीनों मेरे आंबलम् पर खूब हँसते रहे।

उसके बाद वे समुद्र कपोतों को पकड़ने के लिए उनका पीछा करने लगे। मुझे भी उन्होंने साथ मिला लिया। समुद्र कपोत कुछ ऐसे अविश्वासी थे कि हमारे बीस कदम दूर रहते ही झुंड का झुंड पचास सौ कदम उड़कर आगे चला जाता। हम बड़ी चातुरी से आगे बढ़ते हुए पुनः जब पन्द्रह बीस कदम के अन्तर पर पहुँचते तो वह सारा झुंड फिर उड़कर आगे चला जाता। मील भर दौड़कर भी हम झुंड के पास नहीं पहुच सके।

कुछ देर बाद जब बच्चे चले गये तो मैं रेत पर लेट गया। कन्या कुमारी की ओर जाती हुई समुद्र की तट रेखा—दूर तक दिखाई दे रही थी। पानी धीरे धीरे बढ़ रहा था—एक लहर आई और मुझ से एक गज दूर तक की रेत को भिगो गई। फिर एक और लहर पांच छः गज के फासले तक आकर लौट गई। फिर एक और लहर उससे भी दो तीन फुट आगे तक चली आई। परन्तु तब तक मैं उठकर वहाँ से चल दिया था।

× × ×

अलेप्पी से मैं क्वाइलोन आ गया। क्वाइलोन में थंकासरी समुद्र तट के पास ही लाइट हाउस है। लाइट हाउस के ऊपर से देखते हुए नीचे समुद्र का पानी ऐसे लग रहा था—जैसे हवा से कांपता हुआ पतला सुरमई वस्त्र फैला है। नावें उस कोण से बहुत छोटी और अपनी छायाओं और पीछे बनती सफेद लकीरों सहित ऐसी दिखाई दे रही थीं, जैसे वे उस फैलाव पर चित्रित की गई हों। दूसरी ओर घने नारियलों के शिखर क्षितिज तक फैले थे और धूप और हवा मिलकर उनमें लहरें पैदा कर रही थीं। पानी और नारियल के पत्तों का एकसा ऊर्मिल कम्पन तट रेखा के पास मिल रहा था, जो सांप की तरह बल

खाये हुए दक्षिण-पूर्व की ओर उत्तरोत्तर सिमटती चली गई थी। वहां से लगता था कि उसका कोना वह पास ही कहीं होगा।

कोवलम्

त्रिवेन्द्रम् आकर मैंने पहली रात कोवलम् के रेस्ट हाउस में बिताने का निश्चय किया। कोवलम् त्रिवेन्द्रम् से सात मील दूर एक 'बीच' है, जिसे यह नाम शायद इस लिए दिया गया है कि उसका आकार मलयालम् के अक्षर 'को' से मिलता जुलता है। इस 'बीच' की चर्चा मैंने बहुतों से सुन रखी थी।

जिस बस्ती के पास मैं बस से उतरा, कोवलम् वीच वहाँ से एक मील था। उस समय सन्ध्या हो रही थी। बस स्टॉप के पास ही तीन चार वृद्ध पत्थरों पर बैठे गपशप कर रहे थे। एक लड़का पंद्रह बीस साथ साथ बँधी हुई बकरियों को लिये जा रहा था। सड़क के मोड़ के पास एक स्त्री चूल्हा जला रही थी। बाईं ओर चाय की दुकान में अँगीठी पर रखी हुई केतली में पानी उबल रहा था। मैं चाय पीने के लिए उस दुकान में चला गया।

दुकान में और भी कुछ लोग चाय पी रहे थे। मुझे बाहर का व्यक्ति जान कर उन सब का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हो गया। उनमें से एक अधेड़ व्यक्ति ने मेरे पास आकर पूछा कि मैं कहाँ से और किस उद्देश्य से वहां आया हूं, यह जान कर कि मैं दिल्ली के पास कहीं से आया हूं, वह बैठकर रुचिपूर्वक मुझ से दिल्ली के जीवन के सम्बन्ध में तरह तरह के प्रश्न पूछने लगा।

कुछ देर बाद जब चाय पी कर उस दुकान से निकला तो 'वह' व्यक्ति कोवलम् की सड़क पर मेरे साथ साथ बात करता हुआ चलने

लगा। वह जिस सहज विश्वास के साथ बात कर रहा था, उस से लगता था कि वह बहुत सरल हृदय का व्यक्ति है। उसने अपने विषय में बतलाया कि वह उस बस्ती से कुछ मील दूर एक गाँव में रहता है। जिस गाँव में वह रहता था, वहाँ का एक ज़मींदार उस इलाके का आतंक समझा जाता था। झूठे मुकदमे बनाना, लोगों को पिटवाना और जान से मरवा देना, ये सब बातें उसके कृत्यों में शामिल थीं, परन्तु उसकी इतनी पहुँच थी कि उस पर किसी तरह की आँच नहीं आ पाती थी। उस इलाके के किसान उस व्यक्ति की वजह से बेहद परेशान रहते थे।

बात चीत करते हुए हम उस दोराहे के पास पहुँच गये, जहाँ से एक रास्ता रेस्ट हाउस की तरफ़ जाता और दूसरा नीचे 'बीच' की तरफ़। मुझे विश्वास था कि रेस्ट हाउस में जगह का प्रबन्ध हो जायगा, इस लिए मैंने प्रस्ताव किया कि पहले चलकर 'बीच' पर कुछ देर बैठें।

'बीच' पर आकर हम रेतपर बैठ गये। अब मुझे ध्यान आया कि मैंने शाम का खाना नहीं खाया। मैंने उस व्यक्ति से पूछा कि वहां पास कहीं कुछ खाने को मिल सकता है या नहीं। उसने कहा कि पास के किसी घर से खाने का प्रबन्ध किया तो जा सकता है पर वह खाना मुझ से खाया नहीं जायगा।

"किसी भी तरह के चावल हों तो मैं बड़े मज़े से खा सकता हूं" मैंने कहा, "इस एक महीने में मैंने हर तरह के चावल खाये हैं।

"चावल ही की तो समस्या है," वह बोला, "यहां हम लोग चावल हफ्ते में एकाध बार ही खा पाते हैं।"

"हफ्ते में एकाध बार ?" मैंने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हम लोगों का प्रधान खाद्य चावल नहीं है," वह बोला, "चावल इतना मँहगा है कि हममें से अधिकांश खरीद नहीं सकते। हमारा

दोनों समय का भोजन 'मर्चिनो' है—टेपियोका—उसे आप लोग क्या कहते हैं...?"

मैं इतना ही जानता था कि टेपियोका शकरकन्द की तरह की एक जड़ होती है जो खाने के काम आती है। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मनुष्योंका एक वर्ग मुख्य रूप से टेपियो का ही खाकर जीता है। मेरा आश्चर्य देख कर उस व्यक्ति ने बतलाया कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो दोनों समय पेट भर टेपियोका भी नहीं खा पाते। गरीबी और बेकारी इतनी है कि उस वर्ग में धीरे धीरे जीवन की सभी मान्यताएं शिथिल होती जा रही हैं। वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध है, फिर भी कई गरीब घरों की स्त्रियों को यह वृत्ति अपनानी पड़ती है, जिससे दोनों समय कम से कम टेपियोका तो खाने को मिल सके। वे इस उद्देश्य से धीमे धीमे होटलों में ले जायी जाती हैं, या अपने जर्जर घरों में ही लुक छिप कर कर अपने शरीरों का व्यापार करती हैं!

समुद्र में पानी बढ रहा था, अतः हम उठ कर रेस्ट हाउस की तरफ चल दिये। रेस्ट हाउस पहुँचकर पता चला कि वहां जगह खाली नहीं है। रात के नौ बज चुके थे। उस समय त्रिवेन्द्रम जाने के लिए कोई बस भी नहीं मिल सकती थी। खाने की समस्या के साथ साथ अब रात बिताने की समस्या भी उठ खड़ी हुई।

"देखिये मैं कहीं कुछ प्रबन्ध करता हूँ" उस व्यक्ति ने कहा और साथ लेकर गांव की झोपड़ियों की तरफ चल पड़ा। वहां उसने दो चार व्यक्तियों से बातें की, उन्हें स्थिति समझाई और फिर एक व्यक्ति को साथ लेकर वापस लौटा। मुझे उसने बतलाया कि उस व्यक्ति के पास वहां के स्कूल की चाबी है और रात के लिए स्कूल का एक कमरा खोल कर देने जा रहा है। कमरा खुलने पर हम सब ने मिल कर तीन बेंचें साथ साथ जोड़ लीं। इस तरह मेरे बिस्तर का प्रबन्ध हो गया।

अब उन्होंने मेरे खाने की समस्या को लेकर आपास में बातचीत की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लड़के को भेज कर पास के एक स्थान से दूध मंगवा के लिया जाय। उस लड़के को बुलवाया गया। वह पैसे लेकर दूध लाने चला गया।

इस बीच हम सब स्कूल के बाहर बरामदे में बैठकर बातें करने लगे। दूसरा व्यक्ति जाकर अपने दामाद को बुला लाया। एक दो व्यक्ति और भी आ गये। उनमें से अंग्रेजी समझने वाला केवल वही व्यक्ति था जो मेरे साथ बस्ती से आया था। वह अब उनकी बात मुझे और मेरी बात उन्हें समझाने लगा। उनमें, से एक बुड्ढा बार बार यह प्रश्न पूछ रहा था कि क्या दिल्ली की सरकार कोई कानून नहीं बना सकती, जिसके अनुसार हर इन्सान को अनिवार्य रूप से पूरा खाना मिल सके?

"बैल चारा खाता है तो हल जोतता है," एक बार उसने कहा, "बैल को चारा न दें, तो वह काम नहीं कर सकता। हम लोग सरकार के बैल हैं। क्या यह सरकार का फर्ज नहीं कि हमें पूरा चारा दे। जो अपने बैल को पूरा चारा नहीं देता, उसकी फसल ऊंची नहीं होती, यह तुम दिल्ली जाकर सरकार से कह सकते हो?"

रात के वातावरण में उस बुड्ढे के आक्रोशपूर्ण शब्द शिकायत से अधिक चुनौती की ध्वनि लिये हुए प्रतीत होते थे।

जो लड़का दूध लाने गया था, वह थोड़ी देर बाद दूध लेकर आ गया। उसके पीछे पीछे लाठी टेकता हुआ वृद्ध और एक युवा स्त्री भी आई। वृद्ध हम लोगों के निकट आ गया और युवती जरा पीछे खड़ी रही। उस वृद्ध की दाढ़ी महीना बीस दिन की बढ़ी हुई थी और उसका लाठी वाला हाथ जरा काँप रहा था। पास आकर पहले मुझे ध्यान से देखा फिर शेष व्यक्तियों को सम्बोधित करके कुछ कहा। मेरे साथ आये व्यक्ति

ने मुझे बतलाया कि उसका लड़का उसे और अपनी पत्नी को पीछे छोड़कर घर से भागा हुआ है। किसी ने उसे बतलाया था कि वह भाग कर दिल्ली गया है। वह यह सुन कर कि मैं दिल्ली के पास से आया हूँ, अब एक मील से यह पता करने आया है कि मैंने उसके लड़के को वहां कहीं देखा तो नहीं, लड़के का नाम भूमिनाथन है। वह लगभग मेरी ही आयु का है और जरा जरा हकला कर बोलता है।

जब उसने मेरी बात बुड्ढे से कही कि एक तो मैं दिल्ली का रहने वाला नहीं, फिर दिल्ली इतना बड़ा शहर है कि वहां किसी को इन लक्षणों से पहचान लेना असंभव है, तो वह निराश होकर कुछ क्षण तो अनिश्चित सा खड़ा रहा। फिर वापस चल पड़ा। औरत उसी तरह खड़ी थी। मैंने अनुमान लगा लिया था कि वह बुड्ढे की बहू होगी। जब बुड्ढा उसके पास पहुंचा तो युवती ने धीमे स्वर में उससे कुछ कहा। बुड्ढा उसकी बात सुनकर फिर लौट आया। इस बार आकर वह लड़के कद, रंग और नक्श आदि के विषय में विस्तृत जानकारी देने लगा। उस पर भी जब मैं उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका तो वह कुछ ऐसे अविश्वास के साथ एक दृष्टि मुझ पर डालकर जैसे मैंने जानबूझ कर उसे टालने की चेष्टा की हो, और एक ठण्डी सांस भर कर चुपचाप वापस चल पड़ा। इस बार वह युवती बिना कुछ कहे उसके पीछे पीछे चली गई।

उन दोनों के चले जाने पर मैंने अपने साथ वाले व्यक्ति से पूछा, "इसका लड़का घर छोड़कर क्यों भाग गया था?"

"अपनी जमीन हाथ से चली गई थी, 'वह बोला' इन दो प्राणियों के अतिरिक्त उसके दो बच्चे भी हैं। मजदूरी करके पांच आदमियों के खाने लायक कमा नहीं पाता था। एक दिन गुस्से में आकर बाप को मार बैठा। फिर वह बात मन को लग गई और उसी रात घर छोड़

कर चला गया। कह नहीं सकते कि कहीं है भी या खुदकशी ही कर बैठा है। पहले यह बुड्ढा रोया करता करता था कि उसने जाकर खुदकशी कर ली है। इस पर कुछ लोगों ने इससे कह कि एक आदमी ने उसे दिल्ली में देखा। तब से इसे थोड़ी तसल्ली हो गई है। मगर इसके घर की हालत दिन बदिन खराब होती जा रही है।

"यह आप तो कुछ कर नहीं सकता होगा," मैंने कहा. "फिर इन लोगों का गुजारा किस तरह होता है ?"

"इसकी बहू मजदूरी करती है," वह बोला, "इसी बात पर बाप बेटे की लड़ाई हुई थी। लड़का पत्नी से मजदूरी कराना चाहता था, पर बाप उस समय उसके लिये राजी नहीं था। अब घर में वही एक कमाने वाली है। परन्तु घर की हालत इतनी खराब रहती है कि किसी दिन उसे कुछ भी करना पड़ सकता है। आखिर बेचारे कितने दिन भूखे रह सकते हैं ?"

उसका मतलब समझ कर मेरे शरीर में कंपकंपी दौड़ गयी। उस समय मेरे मस्तिष्क में अर्णाकुलम् होटल के मैनेजर के शब्द घूम गये "पेरियार लेक पर हमारे जैसा प्रबन्ध आपको और किसी का नहीं मिलेगा।" पेरियार लेक, कोवलम् या कन्याकुमारी, सब जगह वह प्रबन्ध इन्हीं घरों में से होता है।

बुड्ढा फिर लौटकर आ रहा था। युवती अब उसके साथ नहीं थी। इस बार उसने पास आकर कहा कि मैं दिल्ली जाऊं तो कम से कम खयाल जरूर रखूं। हो सकता है कभी मेरी उस पर नजर पड़ जाय। उस अवस्था में मैं उसे बस एक चिट्ठी लिख दूं। और नये सिरे से मुझे लड़के के रंग नक्श आदि के विषय में बतलाने लगा।

इस बार मैंने उसे आश्वासन दिया कि मैं दिल्ली जाऊंगा तो जरूर खयाल रखूंगा।

जाते हुए वह कह गया कि सवेरे मैं उसकी प्रतीक्षा करूं, जल्दी न चला जाऊं, वह अपना पता लिखवा कर एक पोस्ट कार्ड मुझे दे जायगा।

आखिरी चट्टान

कन्या कुमारी—

केप होटल के आगे बने हुए बाथ टैंक के बाईं ओर, उभरी हुई चट्टानों पर खड़े होकर मैंने पहली बार भारत के स्थल भाग की आखिरी चट्टान को देखा। पीछे कन्या कुमारी के मन्दिर की लाल और सफेद लकीरें दिखाई दे रहीं थी। लहरें रास्ते की चट्टानों से कटती हुई आती थी, अतः उनके ऊपर चूर्णित बूंदों की सफेद जाली-सी बन जाती थी। एक ओर अरब सागर और हिन्द महासागर की क्षितिज-रेखा को और दूसरी ओर तट पर लहरों के आघात को देखते हुए वहां से विस्तार और शक्ति का एक साथ पूरा अनुभव किया जा सकता था।

कन्या कुमारी को सुनहरे सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि कहा जाता है। पश्चिम के क्षितिज में सूर्य धीरे धीरे नीचे जा रहा था। मैं चट्टानों से सड़क पर आ गया। पश्चिमी तट-रेखा के एक मोड़ के पास रेत का ऊंचा उभार दिखाई दे रहा था। मैं उसे लक्ष्य में रखकर चलने लगा। कितनी ही टोलियाँ उस समय सड़क पर सूर्यास्त की दिशा में जा रही थीं। मेरे आगे आगे कुछ मिशनरी रमणियाँ सैल्वेशन की समस्या पर विचार करती चल रही थीं। मेरी रुचि मुक्ति की समस्या में नहीं, पीली रेत के वैषम्य में उनके लबादों के काले सफेद रंग को देखने में थी। सैंड हिलपर पहुँचकर वे रुक गईं, क्योंकि और

भीबहुत से लोग वहीं रुके हुए थे। आठ दस युवतियाँ थीं, छः सात युवक और दो तीन गांधी टोपी वाले प्रौढ़ व्यक्ति। वे लोग भारत सरकार के अतिथि थे क्योंकि गवर्नमेंट गेस्ट हाउस के बैरे उस समय वहां उन्हें सूर्यास्त के समय की काफी पिला रहे थे। वे शायद हैदराबाद कांग्रेस के अधिवेशन से वहां आये थे। उनकी वजह से सैंड हिल बहुत रंगीन हो उठी थी। उन्होंने कन्या कुमारी का सूर्यास्त देखने के लिए विशेष रुचि के साथ सुन्दर रंगों का रेशम पहना था, जिसे तेज हवा उस समय उर्मिल बनाये हुए थी। मैं सैंडहिल की रंगीनी से आगे बढ़ गया। मुझे लगता था कि अगले मोड़ के पास रेत और ऊंची है और वहां से पश्चिमीय क्षितिज का अपेक्षाकृत अधिक खुला भाग दिखाई देगा। वहां पहुंचकर फिर लगता कि शायद और आगे जाकर और खुला भाग आ जायगा। धीरे धीरे उस तरह मैं ऊंचाई तक चला गया, जहां से आगे की ओर भी ढलान आरंभ हो जाती थी। वहां से दूर-दूर हटकर उगे हुए कुछ नारियलों के झुरमुट दिखाई दे रहे थे। गूंजती हुई हवा के वेग में नारियलों के पत्ते इस तरह आकाश की ओर उड़ रहे थे जैसे तेज तूफान में किन्हीं जंगली युवतियों के खुले केश। पश्चिम की ओर तट के साथ साथ सूखी पहाड़ियों की शृंखला थी, जो सामने फैली हुई रेत के कारण और भी वीरान लग रही थी। रेत सूर्यास्त काल की सुनहरी आभा में इस तरह चमक रही थी, जैसे उसके निर्माण के समय का रंग अभी ताजा हो। उस भूमि और उस वातावरण में एक आवेश जन्म देने वाली मासूमियत थी।

सूर्यास्त के बाद जब मैं वापस लौटने लगा तो मैंने देखा कि सैंड-हिल से मैं इतना आगे आ गया हूं कि वहां पर माननीय आकृतियों की बजाय केवल हिलते हुए रंगीन वस्त्र ही दिखाई देते हैं। जिस रास्ते से आया था उस रास्ते से लौटने की बजाय अब मैं रेत पर

बैठकर नीचे 'बीच' की ओर फिसल गया, और वहां मिले जुले रंगों की रेत पर चलने लगा। लाल आंधी और काली घटा के रंगों को आपस में मिला देने से जितनी तरह के हल्के गहरे रंग मिल सकते हैं वे सब रंग उस तट की रेत में दिखाई दे रहे थे। समुद्र में पानी बढ़ रहा था। बीच की चौड़ाई क्रमशः कम होती जा रही थी। कहीं कहीं तो वह चार पांच फुट ही रह गई थी। दूसरी ओर पीली रेत इस तरह ऊंची उठी हुई थी कि उस पर चढ़कर ऊपर पहुंच जाना संभव नहीं था। मैं तेज तेज चलने लगा। दो एक लहरें आकर मेरे पैरों को भिगो गईं। अब रास्ते में एक चट्टान आ गयी। उस पर से कूदने पर आगे कुछ चौड़ा 'बीच' मिल गया, और वहां से ऊपर की ओर जाने का रास्ता दिखाई देने लगा।

केप होटल पहुंचकर खाना खाने के बाद मैं बाहर लान के सिरे के पास एक कुर्सी बिछाकर बैठ गया। अंधेरे में विशाल हिन्द महासागर के आगे फैली हुई पास के एक पौधे की टहनियां काली रेखाओं जैसी दिखायी दे रही थीं। नीचे तट के पास की सड़क पर कोई टार्च जलाता बुझाता चल रहा था। दूर दक्षिण पूर्व में एक जहाज की मद्धम रौशनी दिखाई दे रही थी। उसी समय एक गीत का स्वर सुनाई देने लगा जो क्रमशः पास आता गया। एक बस होटल के कम्पाउंड में आ गई। वह शायद किसी कान्वेंट की बस थी। बस में बैठी हुई लड़कियां एक अंग्रेजी गीत गा रही थीं, जिसमें समुद्र पर के सितारे को सम्बोधित किया गया था। बस कुछ देर रुक कर वापस चली गई, परन्तु वातावरण में उस गीत की धुन देर तक समाई रही।

× × ×

"अकेले कन्याकुमारी में चार पांच सौ शिक्षित नवयुवक हैं जो बेकार हैं। सौ के लगभग तो ग्रेजुएट ही हैं। हमारी आठ हजार की बस्ती में यह हाल है तो पूरी स्टेट की अवस्था का अनुमान आप

लगा सकते हैं। त्रिवेन्द्रम् में बसों के प्रायः सभी कण्डक्टर ग्रेजुएट हैं। वह काम भी उन्हें आसानी से नहीं मिलता। कहने को तो कहा जाता है कि ट्रावनकोर-कोचिन में शिक्षा का बहुत प्रसार है, पर इस शिक्षा का उपयोग क्या हो रहा है? कोई छोटा मोटा उद्योग भी चलाना चाहें उसके लिए पैसा हम लोगों के पास नहीं होता। बस नौकरी के लिए अर्जियां भेजते रहते हैं, दिन भर इधर उधर घूमते रहते हैं या बैठकर आपस में बहस किया करते हैं। कभी कभी थोड़ा बहुत सोशल वर्क कर लेते हैं। परन्तु इससे हमारी समस्या तो नहीं हल होती। हम लगकर राजनीतिक काम भी नहीं कर सकते, क्योंकि कई मेरे जैसे नवयुवकों की परिस्थितियां ऐसी हैं कि पूरा पूरा परिवार उन पर निर्भर करता है। मैं यहां पर फोटो-एल्बम बेचता हूँ। ये लोग भी ऐसे ही छोटे मोटे काम कर लेते हैं। बस इसी तरह चल रहा है। और क्या किया जा सकता है?"

सबेरे सूर्योदय के समय हम आठ व्यक्ति उस चट्टान पर बैठे थे, जिस पर जाकर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी। यह चट्टान तट से सौ सवा सौ गज आगे, समुद्र के उस भाग में है, जहां बंगाल की खाड़ी की भौगोलिक सीमा समाप्त हो जाती है। हम आठ व्यक्तियों में से तीन कन्या कुमारी के बेकार नवयुवक थे, जिसमें से एक जो ग्रेजुएट था, मुझे वहां की बेकारी की समस्या के विषय में बतला रहा था। चार मल्लाह थे, जो एक छोटी सी मछुआ नाव में हमें किनारे से वहां तक लाये थे। यद्यपि अन्तर बहुत थोड़ा ही था, फिर भी नीचे की चट्टानों में बचाते हुए और ऊंची ऊंची लहरों के ऊपर से सँभलते हुए नाव को वहां तक ले आना बड़ी कुशलता का काम था। अब उनमें से एक मल्लाह कुछ सीपियां इकट्ठी करके ले आया। ग्रेजुएट नवयुवक मुझे उनका गूदा निकालकर दिखाने लगा, जो वहां का एक खाद्य है। सूर्योदय होने वाला था। हम सब सीपियां तोड़ते हुए उदयदिशा की ओर देखने लगे।

पानी और आकाश में तरह तरह के रंग मिल मिलाकर सूर्य धीरे धीरे उदित हो गया। भारत के स्थलभाग की आखिरी चट्टान हमारी पीठ की ओर थी, और हमारा विचार अब नाव में बैठकर उस चट्टान तक जाने का था। मल्लाहों का विचार था कि उस ज्वार में वहां तक नाव ले जाना असम्भव है। परन्तु मेरे साथी नमयुवकों ने उन्हें एक बार चेष्टा करके देखने के लिए मना ही लिया। हम नाव में आ बैठे। नाव विवेकानन्द चट्टान के आगे से घूमकर लहरों के चपेड़े खाती हुई आखिरी चट्टान की ओर बढ़ने लगी। किनारे पर उस समय गवर्नमेंट गेस्ट हाउस के बैरे सरकारी मेहमानों को सूर्योदय के समय की काफी पिला रहे थे। दो स्थानीय युवतियां शंखों से भरी टोकरियां आगे रखे, उन लोगों को शंखों की मालायें दिखा रही थीं। सरकारी मेहमान उनसे शंखों का मोल तोल कर रहे थे।

ग्रेजुएट नवयुवक मुझ से बोला, "ये शंख बेचने वाली दोनों युवतियां यहां पर 'सप्लाई' होती हैं। ये दोनों बहनें है। उनके बाप को लकवा मार गया है और वह चल फिर नहीं सकता। आज ये दोनों बाहर आ गई हैं, नहीं तो अक्सर एक उसके पास रहती है और एक बाहर आती है।

"क्या ये शंख बेचकर अपनी आजीविका नहीं चला सकती?" मैंने पूछा।

"शंख बेचकर दिन में दो चार आने से अधिक नही मिलते" वह बोला, "पहले विदेशी यात्री आते थे तो दो दो पांच पांच रुपये में एक माला ले जाते थे। अब जो लोग आते हैं, वे दो आने में भी एक माला लेते हैं तो कुछ इस तरह जैसे माला खरीद कर इन लोगों पर अहसान कर रहे हों। उन दिनों शंख बेचकर गुजारा चल सकता था। अब नहीं चल सकता।"

मैंने पुनः उन युवतियों को देखा जो उस समय सरकारी मेहमानों से माला खरीदने का अनुग्रह कर रहीं थीं। उन लोगों को मालायें पसन्द नहीं आई थीं, अतः वे उनके अनुग्रह की ओर ध्यान न देकर सूर्योदय के सौन्दर्य को देखने लगे थे। मुझे उस समय अर्णाकुलम् होटल के मैनेजर के शब्द याद आये। "पेरियर लेक पर हमारे जैसा प्रबन्ध आपको और किसी का नहीं मिलेगा!"

नाव थपेड़े खाती हुई बढ़ रही। आखिरी चट्टान अब दूर नहीं थी। ग्रेजुएट नवयुवक उधर संकेत करके बोला, "दो महीने हुए एक नवयुवती ने उस चट्टान पर से कूद कर आत्म हत्या कर ली थी।"

"क्यों?"

"सुना है कि वह मां बनने वाली थी। आत्म हत्या करने के लिए ही वह यहाँ आई थी। वह त्रिवेन्द्रम और अर्णाकुलम के बीच के किसी स्थान की थी। बाद में उसका शरीर पुट्टम नामक स्थान के पास लहरों ने किनारे पर निकाल दिया था।"

मैं सोचने लगा कि वह आत्महत्या करने के लिए वहां इतनी दूर से चलकर क्यों आई? मां बनने के अपराध से मुक्त होने के लिए उसने मातृतीर्थ और कन्या कुमारी के मन्दिर को ही साक्षी रूप में क्यों चुना? क्या यह उसकी भावुकता थी या एक मौन आक्षेप?

मल्लाहों ने बतलाया कि नाव को लौटाना पड़ेगा, वह उस चट्टान तक नहीं ले जाई जा सकती। अब हम किनारे की ओर बढ़ने लगे। आखिर चट्टान धीरे धीरे दूर होने लगी।

कन्या कुमारी के मन्दिरों में पूजा आरंभ हो गई थी। मातृतीर्थ से लौटती हुई भक्तों की एक टोली मन्दिर के बाहर रुककर दीवारों को प्रणाम कर रही थी। शंख बेचने वाली युवतियां टोकरियां उठाये अब उन लोगों के पास शंख बेचने आ रही थीं।